UNIVERSAL LIBRARY
OU_182419
UNIVERSAL LIBRARY

Osmania University Library

Call No. H82.6 S25T

Accession No. GH2363

Author शरन, सत्येन्द्र

Title तार के खंभे 1946

This book should be returned on or before the marked below.

तार के खंभे

सन् १९४६ में

लिखित

सत्येन्द्र शरत् की अन्य रचनाएँ

प्रकाशित

नील कमल	(कहानियाँ)

अप्रकाशित

नई सुबह	(स्टडी स्केच)
चन्दन व शबनम	(उपन्यास)
कुन्दमाला	(अनुवादित नाटिका)
गर्मी और रोशनी	(एकांकी नाटक)

तार के खंभे

सत्येन्द्र शरत्

सेंट्रल बुकडिपो
इलाहाबाद

प्रकाशक
सेंट्रल बुकडिपो
इलाहाबाद

कॉपी राइट १९४८
सत्येन्द्र शरत्

पहला संस्करण—नवम्बर १९४९

मुद्रक
जगतनारायण लाल
हिन्दी साहित्य प्रेस, प्रयाग

अपनी बात

अपने एकांकी नाटकों का यह पहला संग्रह मैं आप के सामने रख रहा हूँ। ये नाटक १९४६ में लिखे गये थे, लेकिन आज तीन वर्ष बाद ही इनका पुस्तक-रूप में उपस्थित किया जाना संभव हो सका है। वैसे ये नाटक 'इलाहाबाद युनिवर्सिटी हिंदी मेगज़ीन', 'हंस', 'रानी', 'संगम', 'प्रतीक' आदि में छप चुके हैं। संग्रह में शामिल करने के लिए इन्हें नये सिरे से लिखा गया है।

इस संग्रह के कुछ नाटक दूसरे लेखकों की रचनाओं से प्रभावित हो कर लिखे गये हैं। श्री यशपाल की एक कहानी को पढ़कर "गुड बाई अनीता!" लिखने का विचार मेरे मन में आया था। इसी प्रकार पोलिश लेखक वोल्सलाव प्रूस की कहानी से प्रभावित हो कर 'तार के खंभे' लिखा गया। 'एस्फ़ोडेल' लिखने की प्रेरणा भी एक विदेशी कहानी से मिली थी। 'प्रतिशोध' में तो प्रसिद्ध एकांकीकार श्री भुवनेश्वरप्रसाद का उल्लेख स्पष्ट ही है। और यह सब स्वीकार करने में मुझे कोई झिझक नहीं है।

अंतिम नाटक के कारण ही संग्रह का नाम 'तार के खंभे' रखा गया है, जो कि अपने नाम को सार्थक करता है। मेरे भावों और विचारों को आप तक पहुँचाने के लिए यह नाटक-संग्रह 'तार के खंभे' का ही काम करता है।

इन नाटकों के लिखे जाने से प्रकाशित होने तक मुझे जिन मित्रों की सहायता मिली है उन सब का मैं आभारी हूँ। गुरुवर बच्चन जी ने अपने एक नवीन गीत का उपयोग करने की मुझे अनुमति दी है। उनका मैं ऋणी हूँ। और उनके ऋण से मुक्त होना कठिन है। श्रद्धेय

वात्स्यायन जी और श्रद्धेय अश्क जी से मुझे अनेक बहुमूल्य सुझाव मिले हैं। धन्यवाद देकर मैं उनका मूल्य नहीं घटाना चाहता।

पुस्तक को इस रूप में उपस्थित करने का सारा श्रेय हिंदी साहित्य प्रेस के कर्मचारियों को है। विशेषकर जीवनलाल जी धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने अस्वस्थ होने पर भी इस पुस्तक का मोह न छोड़ा और जिनके उत्साह तथा परिश्रम के बिना पुस्तक का इस रूप में निकलना बहुत ही कठिन था।

हाँ—चलते-चलते एक बात और। इन नाटकों को पढ़ मेरे एक आलोचक मित्र ने कहा—"ये नाटक बहुत तीखे हैं, बहुत ही। 'गुड बाई अनीता !', 'प्रतिशोध' और 'तार के खंभे' समाप्त कर मुझे ऐसा लगा जैसे किसी ने मेरे तमाचे जड़ दिये हों।" हो सकता है, इस बात को शायद और पाठक भी महसूस करें। ऐसी दशा में मेरा यह स्पष्ट कर देना अनुचित न होगा कि 'नाटक की समाप्ति पर तमाचे की अनुभूति' को मैं अपने नाटक की ख़ामी, कमज़ोरी या असफलता की निशानी नहीं मानता। उल्टा मैं तो इस अनुभूति को एक श्रेय-योग्य गुण मानता हूँ, जो कि जतलाती है कि इन नाटकों की कला सशक्त है—क्योंकि कला यदि सशक्त होती है तो वह अवश्य ही चोट पहुँचाती है। और मैं तो कला का सशक्त होना अत्यंत आवश्यक समझता हूँ। दुर्बल कला हमारे किस काम की ? अपनी बात के प्रमाण के रूप में मैं आर्थर केस्ट्लर का वह वाक्य दुहराना चाहूँगा, जिसमें उसने कहा है:—"when art ceases to scandalize, it becomes suspect of having lost its daring." [कला जब चौंकाना छोड़ देती है तो उस पर यह सन्देह होने लगता है कि उसमें अब साहस नहीं रहा।]

प्रतीक
१८, हेस्टिंग्स रोड
इलाहाबाद

सत्येन्द्र शरत्

अनुक्रम :

१—शोहदा	...	...	१
२—"गुड बाई अनीता !"		...	२७
३—एस्फ़ोडेल	....	...	५६
४—प्रतिशोध	...	...	७६
५—तार के खंभे	...	...	१०६
परिशिष्ट	...	...	१३५

[इन नाटकों को स्टेज
करने, अनुवादित करने या
संग्रह में लेने से पहले लेखक
की अनुमति लेना
आवश्यक है।]

शोहदा

इलाहाबाद
जनवरी—४६

देवेन्द्र गौतम

को

[शहर के बदनाम मुहल्ले का एक गंदा छोटा-सा होटल, जिसे होटल न कह बदमाशों और जुआरियों का अड्डा भी कहा जा सकता है। कोई शरीफ़ आदमी शहर के उस भाग में नहीं जाता—इसी कारण होटल भी सज्जनों के सहवास से वंचित ही रहता है।

समय—एक उदास शाम के छः बजे के लगभग। कमरे के बीच में गोल मेज़ पर पाँच-छः जुआरी बैठे हैं। ज़ोरों से ताश हो रहा है। वे लोग आवाज़ें कर रहे हैं—'छोड़ना नहीं'; 'चलो-चलो'; 'अच्छा शो करो'; 'अबे सिर्फ़ दुवन्नी, चवन्नी रख चवन्नी'; आदि-आदि।

होटल का मालिक कमरे के उत्तरी कोने में—प्रमुख दरवाज़े के पास—कुर्सी पर बैठा है। उसके सामने एक छोटी-सी मेज़ है। मेज़ पर टूटी क़लम, सूखी दावात और एक घंटी रखी है। वह उचक कर खेल देख रहा है। प्रमुख दरवाज़ा बंद है।

सहसा प्रमुख द्वार पर बाहर से खटखटाहट होती है। यह आवाज़ मालिक को चौंका देती है और खिलाड़ियों की तन्मयता में बाधा उपस्थित करती है।]

मालिक : (भीत कंठ से) *कौन ?*

आगंतुक : (जिसकी आवाज़ भर सुनायी दे रही है) *मैं हूँ एक ग्राहक। ज़रा जल्दी दरवाज़ा खोलो—जल्दी sss*

[मालिक खिलाड़ियों की ओर अपना पेटेंट संकेत करता है। वे झटपट ताश छिपा लेते हैं और निश्चिंत भाव से बैठ जाते हैं। मालिक बीड़ी सुलगाता है और आगे बढ़ दरवाज़ा खोलता है।

एक ढलते-से युवक का प्रवेश। कमीज़, धोती और फटे-से कोट में। दाढ़ी बढ़ी हुई। वस्त्र और चेहरा बतला रहे हैं कि वह निर्धनता का सताया हुआ है। घबरायी मुद्रा बतला रही है कि वह किसी वस्तु से भय खा रहा है। दोनों हाथ कोट की जेब में हैं। वह बीच में ठिठक कर खड़ा हो जाता है। मालिक आहिस्ता से दरवाज़ा बंद कर लौटता है।]

मालिक : (जुआरियों से) *सज्जनो, बेहतर हो आप अंदर के कमरे में तशरीफ़ ले जायें। आप लोगों की चाय वहीं आ जायगी।*

[खिलाड़ियों का खीसें निपोरते हुए तथा विचित्र चेहरे बनाते हुए दूसरे द्वार से अंदर प्रस्थान।]

मालिक : (आगंतुक की ओर मुड़) *मेरे नये मिहमान बैठिये। कहिये क्या हुकुम है ?*

आगंतुक : (जिसकी घबराहट अब तक दूर नहीं हुई है) *बात यह है कि.....*(जापानी घड़ी की भाँति सहसा रुक जाता है)

मालिक : कहिये-कहिये, रुकते क्यों हैं ?

आगंतुक : नहीं-नहीं। दरअस्ल में.....

मालिक : अरे साहब आप घबराते क्यों हैं ?.....इस तरह काँपिये मत और बतलाइये कि बात क्या है ? क्यों आप इतने परेशान हैं ?

आगंतुक : (कुछ साहस बाँध) मैं.....मेरे पीछे पुलिस लगी हुई है। मैं अपने को बचाना चाहता हूँ। मैंने कुछ नहीं किया है.....

मालिक : हाँ-हाँ, आप ने कुछ नहीं किया है। मैं कब कहता हूँ कि आप ने कुछ किया है।

आगंतुक : (कुछ संतोष से) हाँ। आप.....

मालिक : (बात काट कर) फ़िक्र न करें। आप यहाँ मज़े से बैठ सकते हैं। यहाँ पुलिस क्या, पुलिस का बाप भी नहीं फटक सकता—जी हाँ। मज़ाक न समझिये जनाब, (सिर हिलाता हुआ) यह छेदालाल का होटल है—अजी होटल क्या पनाहगाह है पनाहगाह। यहाँ सज्जन लोग ही पनाह लेते हैं। आते हैं और चले जाते हैं। अपने काम से काम—किसी से न लेना, न देना।

आगंतुक : (जिसे ये बातें व्यर्थ जान पड़ रही हैं) मगर आप मुझे कहीं छिपा दीजिये न ! पुलिसवाले मेरे पीछे लगे हुए थे, शायद वे यहाँ भी आ जायें।

मालिक : (साहसी बनता हुआ) अजी आने भी दो। मैं कोई डरता हूँ उन से ! सोलह साल से होटल चला रखा है मैं ने—जी हाँ !

आगंतुक : लेकिन मैं तो उन से डरता हूँ। तीन दिन से वे मेरे पीछे हैं। अब तक तो मैं ने अपने आप को उन के हाथ नहीं आने दिया है, पर अब दीखता है मैं उनकी पकड़ में आ जाऊँगा। वे मेरे हथकड़ी भर देंगे।

मालिक : (कुछ आश्चर्य से) ऐसा !.....तीन दिन से पीछा कर रहे हैं ! (अचानक) मगर हाँ, वे तुम्हारा पीछा क्यों कर रहे हैं ? क्या किया है तुम ने ?

आगंतुक : (घबरा कर) कुछ नहीं.....कुछ भी नहीं। मैं..... मैं ने तो.....

मालिक : तुम ने कुछ नहीं किया है, यह तो पुलिसवालों को जानना चाहिये। मुझे तो जानना चाहिये कि तुम ने किया क्या है ! क्योंकि मैं पुलिस नहीं हूँ।

आगंतुक : (चुप है—जैसे सोच रहा है, कहे या न कहे)

मालिक : कहीं चोरी करके आये हो ? या (उँगलियाँ कैंची की तरह चला कर) किसी की जेब कतर के ?

आगंतुक : (बल देता हुआ) नहीं।

मालिक : तो फिर ? इस से ज़्यादा की हिम्मत तो तुम्हारे अंदर दीखती नहीं। (रुककर) देखो, सही-सही बात बता दो। मुझ से उड़ने की कोशिश करने की ज़रूरत नहीं।

आगंतुक : (रुक-रुक कर) मैं.....दरअस्ल में मैं.....(एकदम साहसी बन कर) मैं ख़ून कर के आया हूँ।

मालिक : (जैसे आकाश तिरछा हो गया हो) ख़ून !

आगंतुक : (ख़ामोश है)

मालिक : तु.....तु.....तुम ख़ून करके आये हो !.....तुम ने ख़ून किया है ?.....मुझे ताज्जुब हो रहा है। तुम्हारे जैसा आदमी भी ख़ून कर सकता है ?

आगंतुक : (कोई उत्तर नहीं)

मालिक : (जैसे अपनी कही हुई बातों का स्वयं उत्तर ढूँढ़ रहा हो) हो सकता है—मैं मानता हूँ। दुनिया में आदमी क्या नहीं कर सकता !.....ख़ून भी कर सकता है। तुम भी ख़ून कर सकते हो। लेकिन मेरे ख़्याल से तुम ने अपने शिकार के सामने पिस्तौल का घोड़ा दबाया होगा !

आगंतुक : ('हाँ'—सूचक सिर हिलाता है)

मालिक : (सिर हिलाते हुए) हूँ, मैं जानता हूँ। छुरा भोंकने की हिम्मत मुझे तुम्हारे अंदर नहीं दिखाई पड़ती। और गला—वह तो मर्द ही घोट सकता है—तुम्हारे जैसा नहीं। (ठहर कर) ख़ून किस शहर में किया है—इसी में ?

आगंतुक : (मानो शब्द उस के गले में अटक रहे हों) हाँ, इसी शहर में।

मालिक : (उस के डर का आनंद उठाते हुए) तो तुम मामूली आसामी नहीं हो। ख़ूनी हो—और हो भी बहुत तिकड़मी। तीन दिन से इसी शहर की गलियों में यहीं की पुलिस को झाँसा दे रहे हो, और अब शायद अँगूठा ही दिखा जाओ। लेकिन इस तरह कब तक बचोगे ? एक न एक दिन फंदे में आना ही पड़ेगा। फिर ?

[अचानक पीछे से जुआरियों का ठहाका सुनायी पड़ता है।]

मालिक : अच्छा एक बात तो बताओ। (आगंतुक के निकट आ कर, धीरे से) कितना रुपया हाथ आया है ?

आगंतुक : रूपया ?.....रूपया तो कुछ भी नहीं मिला है।

मालिक : बहुत घुटे हुए हो तुम।.....हाँ, तुम पनाह लेने यकायक मेरे होटल में कैसे आ गये ?

आगंतुक : (उसे प्रसन्न करने के लिए) जी, मुझे एक आदमी ने बताया था.....

मालिक : (भौं में बल डाल) क्या ?

आगंतुक : यही कि मैं यहाँ जगह पा सकता हूँ—एक हफ़्ता, दो हफ़्ता, यानी जब तक पुलिस छानबीन कर ठंठी न पड़ जाय।

मालिक : (क्रोध न रोक सकने के कारण चीख़ते हुए) नहीं जनाब नहीं। यहाँ आप जैसे ख़ूनी एक हफ़्ता तो क्या, एक घंटे के वास्ते भी पनाह नहीं ले सकते। यहाँ जगह है, हल्के आदमियों के लिए, शरीफ़ों के लिए, जिन्हें पुलिस सिर्फ़ शक की वजह से ही परेशान करती है। आप.....तु.....तुम्हारे जैसे ख़तरनाक आसामियों के लिए नहीं, ख़ूनियों के लिए नहीं। समझे ?

आगंतुक : (दीन मुद्रा) मुझ पर दया करो। मैं तुम्हारे हाथ.....

मालिक : (बात काट कर) हाथ क्या हथकड़ियाँ डलवाओगे मेरे हाथों में ?.....एक गुनहगार को पुलिस की

निगाह से बचाना क़ानून की रू से जुर्म है और उसके वास्ते सज़ा भी मिलती है। तुम तो मेरे पुलिस के सोलह साल के भाईचारे को बरबाद करने आये हो।

[कमरे में ख़ामोशी हो जाती है। अंदर जुआरियों का ज़ोर से हँसना और शोर करना।]

मालिक : (तीखे स्वर से) सुन रहे हो जनाब। तुम्हें छिपा कर मैं अपने पैरों में खुद कुल्हाड़ी नहीं मार सकता। बेहतर है, तुम जैसे आये हो, वैसे ही चले जाओ।

आगंतुक : (काँपता हुआ) लेकिन जाऊँ कहाँ ? बाहर.....

मालिक : (बात काट कर) तुम भाड़ में जाओ। मुझ से मतलब ? इतना ही काफी समझो जो मैं ने तुम्हें इतनी देर जगह दे दी और उस से ज़्यादा यह कि पुलिस को बुलवा कर तुम्हें पकड़वा न दिया। अब तुम जल्दी चले बनो यहाँ से।

आगंतुक : (गिड़गिड़ाते हुए) अच्छा तो थोड़ी देर और रहने दो—मैं तुम्हारे पैर छूता हूँ—फिर मैं चला जाऊँगा।

मालिक : (कुछ शांत हो कर) अजी, तुम्हारे ही जैसे लोगों की वजह से मेरा यह शरीफ होटल बदनाम होता है। जब लोग सुनेंगे कि सारे शहर के खूनी, लफंगे, शोहदे यहाँ इकट्ठा होते हैं और पुलिस यहाँ आकर उन्हें गिरफ़्तार करती है—तो वे क्या सोचेंगे ?.....वे सोचेंगे—यह सज्जनों का होटल

नहीं है। वे यहाँ कभी नहीं आयेंगे। इससे बिज़नेस के साथ होटल के नाम पर भी धक्का लगता है.....समझे? क्या समझे?.....तुम नहीं समझे!.....तुम समझ भी नहीं सकते। तु.....तु.....तुम्हारे दिमाग़ में तो पिस्तौल और ख़ून भरा है। तुम.....

[सहसा दरवाज़े पर फिर खटखटाहट होती है। आगंतुक अपने भाग्य के समान काँपने लगता है। वह मालिक का हाथ पकड़ लेता है, जो उसका हाथ झटक देता है और दरवाज़ा खोलने आगे बढ़ जाता है। आगंतुक भाग कर दूसरे दरवाजे से अंदर चला जाता है।

दुर्भाग्य की भाँति एक नवयुवक का प्रवेश। चेहरा सुंदर, किंतु तनिक विकृत; प्रशस्त ललाट, उस पर बिखरे हुए बालों की एक लट, दीप्तिमान नेत्र—अत्यंत गहरे पानी की तरह न जाने उनके भीतर क्या है; भौंहें धनुष की भाँति—जैसे संसार को चुनौती दे रही हों। चाल में गर्व तथा अभिमान।

वह खद्दर की कमीज़ और पतलून पहने हुए है। दोनों कपड़े साफ़ नहीं कहे जा सकते। कमीज़ का कॉलर काफ़ी मैला दिखाई दे रहा है। दोनों हाथों के कफ़ के बटन टूटे हुए हैं।]

नवयुवक : (कुर्सी पर बैठता हुआ) *चाय—एक प्याला।*

मालिक : *बहुत अच्छा। अभी लीजिये।*

नवयुवक : *देखिये मिस्टर, आप यह दरवाज़ा बंद करते जाइये* (प्रमुख द्वार की ओर संकेत)। *और हाँ, चाय की ऐसी जल्दी नहीं है। मैं एकांत चाहता हूँ—बिलकुल एकांत। कोई मेरी विचारधारा में बाधा न दे।* (सिग्रेट सुलगाता है और जेब से दस रुपये का

एक नोट निकाल कर देता है)

मालिक : (नोट लेता हुआ) *जी बहुत अच्छा,* (अपनी मेज़ से घंटी उठा कर नवयुवक के सामने रखते हुए) *चाय की ज़रूरत पर इसे बजा दीजियेगा।*

[मालिक प्रमुख द्वार बंद करता है और अंदर जाता है। पहले व्यक्ति का फिर प्रवेश। नवयुवक को देख वह भयभीत नहीं होता। नवयुवक इस व्यक्ति को देखता है—आँखों में आश्चर्य का भाव। पहला व्यक्ति मेज़ के पास आ कर नवयुवक के सामने की कुर्सी पर बैठता है।]

नवयुवक : (उपेक्षा से) *तुम.....तुम कौन हो जी? यहाँ क्यों आये हो?*

पहला व्यक्ति : *मैं.....मैं भी यहाँ चाय पीने ही आया हूँ।*

नवयुवक : (पूर्ववत भाव से) *हूँ।* (मुँह दरवाज़े की ओर कर लेता है तथा अन्यमनस्कतापूर्वक धुँवा उड़ाने लगता है)

पहला व्यक्ति : *क्यों, क्या किसी का इंतज़ार है?*

नवयुवक : (खीज कर) *हाँ, पुलिस का।*

पहला व्यक्ति : (काँपते-से स्वर में) *पु.....पुलिस का?*

नवयुवक : (उसे भयभीत देख) *हाँ, पुलिस का। लेकिन तुम इतना डर क्यों गये? सिर्फ़ पुलिस के नाम से ही?* (कुछ ठहर कर) *आश्चर्य की बात है। डरना मुझे चाहिये था—डर रहे हो तुम?*

पहला व्यक्ति : (कुछ साहस कर) *तुम्हें?.....तुम्हें क्यों डरना चाहिये था?*

नवयुवक : क्योंकि मेरी करतूत ही ऐसी है।

पहला व्यक्ति : क्यों ?.....क्या तुम ने भी किसी का ख़ून कर दिया है ?

[अचानक अंदर से जुआरियों के तेज़ ठहाके की आवाज़ आती है। नवयुवक और व्यक्ति दोनों चौंकते हैं। नवयुवक पहले व्यक्ति के चेहरे तथा नेत्रों पर कड़ी दृष्टि डालता है, जो उस तीव्र दृष्टि को सहन न कर सकने के कारण मुँह दूसरी ओर कर लेता है।]

नवयुवक : (कुटिल मुस्कान से) मैं ने किसी का ख़ून किया है नहीं, इसे रहने दो। लेकिन मैं दावे के साथ कहता हूँ कि तुम ने हाल में ही कोई ख़ून किया है। बोलो सच है न ?

पहला व्यक्ति : (जो मुट्ठी के पैसे की भाँति पसीने से तर हो गया है) ले.....लेकिन तु...तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?

नवयुवक : (उसकी दशा देख अट्टहास करता है) बस ! इसी बिरते पर ख़ून किया था ! आश्चर्य है तुम ने ख़ून कैसे कर दिया ? तुम्हारे अंदर ख़ून करने की हिम्मत हो कैसे गयी ? ख़ून करने के लिए दिल चाहिये, और मैं देखता हूँ, तुम्हारे अंदर दिल या हौसला नाम की चीज़ ही नहीं है। फिर किस ने तुम्हारा हाथ पकड़ कर तुम से छुरी चलवा दी, या पिस्तौल का घोड़ा दबवा दिया ? (ठहर कर, घृणापूर्वक) कायर, बुज़दिल नहीं तो कहीं के। जब तुम अभी तक काँप रहे हो तो उस समय

तुम्हारा क्या हाल हुआ होगा ? तुम्हारे जैसे के हाथ से मरते हुए तो उस व्यक्ति को भी दुख हुआ होगा। तुम ने बेकार ही हत्या का नाम बदनाम किया है। अगर तुम्हारे हाथ खुजला रहे थे तो तुम ने कुल्हाड़ी से लकड़ी चीरना क्यों न शुरू कर दिया दिया ? बेकार एक व्यक्ति का रक्त इन टूटे हाथों से क्यों बहाया ? बोलो..... बोलो न.....क्या साँप सूंघ गया है ?.....

(अधिक उत्तेजना के कारण हाँफने लगता है)

पहला व्यक्ति : (अवाक् दृष्टि से नवयुवक को देख रहा है, जैसे उसे समझ न पा रहा हो)

नवयुवक : (कुछ शांत हो कर) मनुष्य.....मनुष्य ईश्वर की सृष्टि की कितनी सुन्दर वस्तु है। स्वयं ईश्वर को अपनी इस रचना पर अभिमान है। संसार रूपी उपवन में वह एक सुन्दर पुष्प है, और तुम ने (उत्तेजित हो कर) तुम ने व्यर्थ ही एक ऐसे सुन्दर पुष्प को मरोड़ दिया, एक सुन्दर खिलौने को तोड़ दिया, जिसे तुम सतत् प्रयत्न करने पर भी नहीं जोड़ सकते, और वह भी निरर्थक ही। क्यों ?.....आखिर क्यों ?.....धिक्कार है तुम पर.....सौ-सौ लानत है तुम्हारे जैसे पर। (कदाचित् अपनी उत्तेजना शांत करने के लिए पतलून की जेब से शराब का अद्धा निकाल, मुँह लगा गट-गट पीने लगता है) तुम से, अरे तुम से तो मैं ही अच्छा हूँ।

पहला व्यक्ति : (सविस्मय) मैं मानता हूँ। पर तुम इसे क्यों पीते हो? यह ख़राब चीज़ है। शरीफ़ आदमी इसे नहीं पीते।

नवयुवक : (व्यंग मुस्कान सहित) तुम जानते हो मैं कौन हूँ?

पहला व्यक्ति : (कुछ साहस कर) नहीं, (ठहर कर) लेकिन मेरे ख़्याल से तुम एक अच्छे आदमी हो—विद्वान और हिम्मत वाले।

नवयुवक : (जोर से अट्टहास करता है—उसका अट्टहास खोखला है, बिल्कुल खोखला)।

पहला व्यक्ति : (उसके चेहरे की ओर देखता हुआ) तुम ऐसा क्यों हँसते हो? तुम्हारी यह हँसी मेरा हृदय कँपा देती है।

नवयुवक : (गंभीरतापूर्वक) क्योंकि तुम ने मुझे बिल्कुल गलत समझा है।

पहला व्यक्ति : (साश्चर्य) क्या?.....तुम्हें गलत समझा है?

नवयुवक : (सिर हिला कर) हाँ, मैं न सज्जन हूँ, न विद्वान। मैं हूँ, बदमाश, आवारा, शोहदा, जालसाज़, डाकू, ख़ूनी, फ़रार और सब कुछ। मैं शैतान का अवतार हूँ, दुनिया भर की बुराइयों का पुलिंदा—और ऐसे आदमी में इस झूठी हिम्मत का होना आश्चर्य की बात नहीं है।

पहला व्यक्ति : (जिसे विश्वास न हो रहा हो) तुम डाकू!..... तुम ख़ूनी!.....

नवयुवक : हाँ, मैं ख़ूनी, और फिर फ़रार!

पहला व्यक्ति : (साहसी बनते हुए) जब तुम भी ख़ूनी हो, तुम ने

भी खून किया है, तो फिर तुम मुझे बुरा-भला क्यों कह रहे थे ?

नवयुवक : (रुचि-सी लेते हुए) उसका कारण है। मैं ने वीरता पूर्वक खून किया था। पता है, मैं ने किसकी जान ली थी ? मैं ने अपने शहर के अत्याचारी कलक्टर का सिर गोली से उड़ा दिया था। वह पापी, बहुत ही क्रूर-हृदय और राक्षस प्रकृति का था। यद्यपि ईश्वर की सृष्टि की एक उपज को नष्ट-भ्रष्ट करने का मुझे कोई अधिकार न था, तथापि उसके काले कारनामों ने मुझे उसकी जीवन-लीला समाप्त करने पर विवश कर दिया। (एक क्षण रुक कर) उस रात उसके प्राइवेट रूम में मैं ने उसे उसके पाप गिनवाये। फिर उसे उसके ईश्वर को याद करने का समय भी दिया—हालांकि उसके जैसे पापी के याद करने से ईश्वर भी उसे याद न आया होगा. ऐसा मेरा विश्वास है। एक, दो, तीन के साथ मेरे रिवाल्वर की गोलियों ने उसके भयभीत मुख को छेद दिया। (हँस कर, हाथ झाड़ता हुआ) इस प्रकार उसका परलोक को पार्सल कर दिया गया, जिसकी कि अभी तक रसीद नहीं मिली है और न मिलेगी ही।

[**अचानक पीछे से जुआरियों को गाली-गलौज की आवाज।**]

पहला व्यक्ति : फिर क्या हुआ ?

नवयुवक : फिर मैं एरेस्ट कर लिया गया। फाँसी की सज़ा

होने से पहिले ही मैं भाग निकला और अब तक पुलिस से बचा हुआ हूँ।

पहला व्यक्ति : तुम भागे क्यों ?

नवयुवक : (मुस्कराने की नकल कर) क्योंकि इसकी आवश्यकता थी। घर पर कुछ इंतज़ाम करना था, (दाँत पीस कर) कुछ गद्दारों से भी मिलना था और कुछ मोटे आसामियों से रुपया भी वसूल करना था।

पहला व्यक्ति : (दृढ़ता से) तुम बहादुर हो।

नवयुवक : (व्यंग्य-मुस्कान) बहादुर.....कम-से-कम मौत से मैं तुम्हारी तरह नहीं डरता। मैं ने ख़ून किया है, इसका मुझे गर्व है। मैं जानता हूँ इसकी सज़ा मुझे मौत मिलेगी। मैं हँसता हुआ फाँसी के तख़्ते पर जा खड़ा होऊँगा। मेरे सोचे हुए काम सब पूरे हो गये हैं। अब तो मैं हमेशा परलोक के माइलेज गिनता रहता हूँ। किसी भी रोज़ मौक़ा देख मैं अपने को पकड़वा दूँगा—किसी को मेरी गिरफ़्तारी का इनाम तो मिल जायगा। लुक-छिप कर जीना, हमेशा ख़तरे में रहना, चूहे जैसी इस ज़िंदगी से मैं नफ़रत करता हूँ। (ठहर कर, एक लंबी साँस ले) और मरने में कोई ग़म भी नहीं है मेरे दोस्त, सिर्फ़ इतना सोचता हूँ कि लोग यही कहेंगे—'अरे यह तो डाकू था, हत्यारा था, शोहदा था।'

पहला व्यक्ति : (प्रभावित स्वर में) लेकिन मैं ऐसा नहीं कहूँगा। हालाँकि तुम ने मुझे बहुत कोसा है, लेकिन तब

भी मैंने बुरा नहीं माना है। मुझे दुःख है तुम उन परिस्थितियों को न जान सके जिन्होंने मुझे मेरी आत्मा के विरुद्ध खून करने पर विवश किया।

नवयुवक : (व्यंग्य मुस्कान) परिस्थितियाँ ?.....क्या थीं वे परिस्थितियाँ ?

पहला व्यक्ति : बी० ए० करने के बाद दो वर्ष बेकारी और गरीबी से टक्कर लेनी पड़ी। अकेला होता तो फ़िक्र न थी, लेकिन साथ में पत्नी, युवा बहन और वृद्धा माँ भी थी। बेकारी में दर-दर भटकता हुआ, काम की भीख माँगता हुआ जब मैं लाला श्याम-नारायण के द्वार पर पहुँचा तो उन्होंने मुझे दो सौ रूपये उसी समय दे और आठ सौ रूपये बाद में देने का वायदा कर मेरे हाथ में पिस्तौल पकड़ा दी। मुझे उनके धनी निःसंतान चाचा माधो-नारायण की हत्या करने को कहा गया। एक बार मैं काँप उठा। हत्या !.....न, यह मुझसे न होगी. किंतु भूखे और अर्ध-नग्न परिवार का करुण चित्र फिर मेरी आँखों के सामने आ गया और पाँच दिन का भूखा मैं, अर्धविक्षिप्त अवस्था में हत्या करने को तैयार हो गया। मुझे कुछ याद नहीं, मैं ने क्या किया ? केवल याद है कि श्याम-नारायण से बक़ाया रूपया माँगने पर उस ने मुझे पुलिस में देने की धमकी दी। तब मैं चैतन्य हुआ और लुकता-छिपता यहाँ आ पहुँचा और तभी आप मिले।

नवयुवक : (सक्रोध) तुम ने श्यामनारायण का बताया काम पूरा किया और उस ने तुम्हें रूपया देने से इनकार कर दिया ? (घृणापूर्वक) बुज़दिल, भीरु, कहीं के ! तुम ने पिस्तौल उस कमीने पर क्यों न ख़ाली कर दी ? तब खुशी-खुशी अपने को पुलिस के हवाले कर देते ?

पहला व्यक्ति : (चिंता-जनक स्वर में) लेकिन तब मेरे परिवार की क्या दशा होती ? मेरे साथ वे लोग भी तड़प-तड़प कर मर जाते !

नवयुवक : (घृणापूर्वक) और अब नहीं मरेंगे वे ?.....उनका मरना ही अच्छा है । मरना तो सिर्फ़ एक ही बार मरना है, लेकिन ज़िंदा रहना—वह तो हज़ार बार मरना है !

पहला व्यक्ति : (आश्चर्यपूर्वक) तुम तो हृदयहीन हो, अति कठोर, निर्मम (सहसा) नहीं-नहीं.....तुम विक्षिप्त हो ! तुम.....

नवयुवक : (बात काट कर) और तुम ?.....तुम क्या कम विक्षिप्त हो ? तुम भला-चंगा मस्तिष्क होते भी उसका उपयोग नहीं कर सकते । तुम नहीं जानते तुम्हें क्या करना है ? तुम स्वयं नहीं जानते तुम क्या कर रहे हो ? तुम्हें नहीं मालूम तुम क्या करोगे ? इसी कारण तुम दुःखी हो । तुम अपनी शक्ति को नहीं पहचान सकते न ? लेकिन मैं..... सब जानता हूँ, समझता हूँ । दुनिया का कोई भी

सत्य मुझ से छिपा हुआ नहीं है, इसी कारण मैं सुखी हूँ।

पहला व्यक्ति : क्या तुम स्वयं अपनी कही हुई बातों का मतलब समझ रहे हो? मैं तो नहीं समझ पा रहा हूँ।

नवयुवक : क्यों मिस्टर तुम ने अपनी यह कहानी इस होटल के मैनेजर को तो नहीं सुनायी है?

पहला व्यक्ति : नहीं, लेकिन मैं ने उससे कह दिया है कि मैं ने खून किया है।

नवयुवक : (तेज़ी से) तो उससे अब कह दो कि तुम ने खून नहीं किया है। कह देना कि पहले तुम ने मज़ाक किया था, सब गलत बात कही थी। समझे?

पहला व्यक्ति : (ध्यान न देता हुआ) मैनेजर साहब.....मिस्टर मैनेजर (सामने मेज़ पर की घंटी पर हाथ मारता है, जो भद्दी तरह दो-एक बार 'किर्र-किर्र.....'करके रह जाती है)

[**मालिक का फुर्ती से प्रवेश। वह अत्यंत आश्चर्य से पहले व्यक्ति को देखता है।**]

मालिक : (नवयुवक से) कहिये, अब ले आऊँ चाय?

नवयुवक : (लापरवाही से) रहने दीजिये चाय। यह बतलाइये कि यहाँ पास में कहीं फ़ोन होगा—मेरा मतलब टेलिफ़ोन?

मालिक : टेलिफ़ोन?.....हाँ-हाँ.....इसी मोड़ पर। परसराम आढ़ती की दूकान में लगा है।

नवयुवक : अच्छा, तो ठीक है। (मनुष्य की ओर मुड़) तुम यहीं बैठे रहना। मैं अभी आता हूँ।

[नवयुवक का दरवाज़ा खोलकर बाहर प्रस्थान। मालिक भृकुटी चढ़ाये, पहले व्यक्ति के सामने आकर खड़ा होता है।]

मालिक : क्यों जी, धरे हो अभी तक ? गये नहीं यहाँ से ?

पहला व्यक्ति : (चेहरे पर मुस्कराहट लाने की चेष्टा कर) अभी से चला जाऊँ, ऐसी जल्दी क्या है ? देखा नहीं मुझे बैठे रहने को कह गये हैं यह साहब। (एक क्षण रुक) हाँ देखो, तुम चाय के लिए पूछ रहे थे, मेरे लिए ले आओ।

मालिक : (व्यंगपूर्वक) जी चाय ?.....हूँ.....मैं ने कहा, चाय कोतवाली में ही पीना। यहाँ चाय-वाय नहीं है। (ठहर कर) समझे नहीं ?

पहला व्यक्ति : (नक़ल करता हुआ) जी कोतवाली ?.....हूँ..... मैं ने कहा, मुझे कोतवाली जाने की क्या ज़रूरत है। मैं ने कुछ नहीं किया है। (ठहर कर) समझे नहीं ?

मालिक : (अचकचा कर) तुम ने कुछ नहीं किया है ?..... लेकिन थोड़ी देर पहले तो तुम ने कहा था कि तुम खून करके आये हो !

पहला व्यक्ति : (खड़ा होकर) लेकिन अब कह रहा हूँ कि मैं ने कुछ नहीं किया है। खून करने की बात गलत थी। तुम्हारी जाँच की जा रही थी।

मालिक : (आप ही आप) जाँच की जा रही थी ?.....लेकिन किस बात की ?.....कुछ समझ में नहीं आता। (रुक कर) यह ज़रूर कोई सी०आई०डी० वाला है।

[मालिक हताश भाव से कुर्सी पर बैठ जाता है। पहला व्यक्ति चुपचाप खड़ा हुआ उसे देखता रहता है। निस्तब्धता छा जाती है। उसे भेदती हुई यकायक अंदर से जुआरियों के ठहाके की आवाज़ आती है। मालिक चौंकता है। पहला व्यक्ति चौंकता है। दोनों एक दूसरे की ओर देखते हैं।

सहसा बाहर के दरवाज़े के खड़कने की आवाज़। नवयुवक का अंदर प्रवेश।]

नवयुवक : (हाथ झाड़ता हुआ) *सब काम पूरा हो गया है। कुछ बाक़ी नहीं रहा।* (पहले व्यक्ति से) *हाँ, अब तुम अपना यह रूपया सँभालो।*

पहला व्यक्ति : (जैसे आकाश से गिरा हो) *रूपया ?.....*

नवयुवक : (उसे आगे बोलने का अवसर न दे) *हाँ रूपया, जो मैं ने अभी तुम से लिया था,* (जेब से नोट निकाल) *लो, गिन लो। पूरे हैं तीन सौ चालीस या बयालीस।*

[नवयुवक पहले व्यक्ति की जेब में नोट ठूँसता है। साथ ही पहले व्यक्ति और मालिक की अज्ञानता में, उनसे छिपा कर पहले व्यक्ति की जेब से रिवॉल्वर निकाल कर अपनी जेब में डाल लेता है।

फिर ख़ामोशी छा जाती है और कुछ देर रहती है।]

पहला व्यक्ति : (सहसा, हताश स्वर में) *मैं इन गुत्थियों को नहीं सुलझा पा रहा हूँ।*

नवयुवक : (गंभीरतापूर्वक) *तुम तो मूर्ख हो। दिमाग के होते*

हुए भी उसका उपयोग नहीं कर सकते। लेकिन देखो, अब इस तरह काम न चलेगा। दुनिया में सीधे बन के रहोगे तो मुँह की खाओगे। तुम अपने दिमाग से काम लेना सीखो। अपने को पहचानो। ज़िंदगी के रास्ते पर लड़खड़ाते और ठोकरें खाते हुए चलना.....

[सहसा कुछ आदमियों के भारी पद-चापों और बूटों की चर्र-मर्र की आवाज़ सुनायी देती है जो दूर से जल्दी ही नज़दीक-नज़दीक होती जाती है। दरवाज़े पर एक निर्दय खटखटाहट। मालिक कुर्सी पर उछल-सा पड़ता है।]

मालिक : (आशंकित, काँपते स्वर में) कौन ?

बाहरी आवाज़ : (रुखाई से) दरवाज़ा खोलो।

नवयुवक : (निर्विकार भाव से) दरवाज़ा खोल दो। पुलिस होगी।

[मालिक दरवाज़ा खोलने आगे बढ़ता है।]

नवयुवक : (फुर्ती से, जेब से रिवाल्वर निकाल, पहले व्यक्ति की ओर मुड़) ख़बरदार, जो पुलिस के आगे एक शब्द भी कहा। बस, ख़ामोश रहना। कुछ न होगा। इतना घबराओ मत। (रिवाल्वर फिर जेब में डाल लेता है)

[पुलिस इंसपेक्टर और चार-पाँच सिपाहियों का धड़ाके से प्रवेश। उनका कमरे में इधर-उधर नज़रें दौड़ाना। एक का झुक कर मेज़ के नीचे देखना।]

नवयुवक : (भयभीत हो, मनुष्य को संबोधित कर) पुलिस ! धोखा ! ज़बरदस्त धोखा।.....आख़िर तुम ने पुलिस बुलवा कर मुझे पकड़वा ही दिया।

पु० इंसपेक्टर : (आगे बढ़, पहचानने की चेष्टा-सा करता हुआ) कौन, मिस्टर वनफूल ?—हमारे फ़रार आसामी, जिनकी इतने दिनों से तालाश थी, और जिनकी गिरफ़्तारी के लिए दो हज़ार रुपये का इनाम है।

मालिक : (चौंक कर, स्वतः) दो हज़ार !.....बाप रे !

नवयुवक : (आग्नेय नेत्रों से मनुष्य को घूरता हुआ, मानो उसे भस्म कर देगा) ट्रेटर ! कमीना ! आख़िर दो हज़ार के इनाम के लालच में आ ही गया न ! मुझे बातों में उलझा अपने आप फ़ोन कर पुलिस मँगवा ली ! क्यों अब तो तसल्ली हो गयी होगी ?.....आख़िर दो हज़ार रुपया जो इनाम मिलेगा—बड़ी बहादुरी से एक फ़रार इनामी आसामी को गिरफ़्तार करवाया है।

पु० इंसपेक्टर : (पहले व्यक्ति से) अच्छा, तो आप ने ही फ़ोन कर हमें इत्तला दी है और गिरफ़्तारी में मदद की है ?

पहला व्यक्ति : (ख़ामोश—भौंचक-सा नवयुवक की ओर देखता है)

नवयुवक : (दाँत पीस) अब बोलता क्यों नहीं ? क्या मुँह में ताले ठोक दिये हैं किसी ने ?.....या इनाम की खुशी में बोल ही नहीं फूटता ?

पु० इंसपेक्टर : (पहले व्यक्ति से) हम आपके शुक्रगुज़ार हैं। आप ने गवर्नमेंट के एक बहुत बड़े दुश्मन को पकड़वाया है। आप जानते हैं, इन्होंने अपने शहर

के कलक्टर का खून किया था। यही इन का जुर्म है।

नवयुवक : (फीकी हँसी हँस कर) मिस्टर इंसपेक्टर, मेरे जुर्मों को आप नहीं जानते। मैं ने लाला माधोनारायण का खून भी किया है—परसों रात में। आश्चर्य न कीजिये। (जेब से रिवाल्वर निकालता हुआ) इसी रिवॉल्वर से। डरिये मत, डरिये मत। आप इसका शिकार नहीं हो सकते। (खोल कर देखता हुआ) यह शायद आपके दिमाग ही की तरह ख़ाली है। (इंसपेक्टर को पकड़ा देता है)

पु० इंसपेक्टर : (डरते-डरते रिवाल्वर पकड़ कर) शौक़त, मिस्टर वनफूल के हथकड़ी लगाओ।

[एक पुलिस का सिपाही आगे बढ़ कर नवयुवक के हथकड़ी भरता है।]

पु० इंसपेक्टर : (रिवाल्वर उलट-पुलट कर देखता हुआ) ठीक है। मैं पहले से क़यास किए था कि यह किसी पुराने पापी की ही हरकत है। नहीं तो मजाल है किसी की, कि खून कर इस तरह तीन दिन मेरी नज़रों से बचा रह जाय!.....उड़ती चिड़िया के पर गिनता हूँ मैं!.....

नवयुवक : (मुस्कुरा कर) अपनी तारीफ़ पुलिस स्टेशन के लिए भी थोड़ी बक़ाया रख छोड़िये। (रुक कर) अब देर करने से फ़ायदा? चलिये। मैं तैयार हूँ।

पु० इंसपेक्टर : चलिए। (पहले व्यक्ति से) आप मेहरबानी कर कल पुलिस स्टेशन पर मिलिए। वहीं बातें होंगी।

(मालिक की ओर मुड़) *क्यों म्याँ छेदालाल, तुम फिर ऐसे ख़तरनाक शरीफ़ज़ादों को पनाह देने लग गए हो। शामत आ गयी है, दीखती है तुम्हारी।* (सिपाहियों से) *चलो जी।* (चलने को उद्यत होना)

मालिक : (झुक कर) *सलाम सरकार।*

नवयुवक : (पहले व्यक्ति से) *अच्छा विदा!*

[पुलिस और नवयुवक चलते हैं तथा बाहर निकल जाते हैं। उनके क़दमों की भारी आवाज़ कुछ देर तक सुनायी पड़ती है, जो धीरे-धीरे दूर होती चली जाती है। एक बेतुका-सा सन्नाटा हो जाता है और कमरे में एक अजीब ही मनहूसियत छाने लगती है।]

मालिक : (परेशानी से) *यह सब क्या हो गया—स्टेज पर ड्रामे की तरह? मेरी समझ में कुछ नहीं आया।* (ठहर कर, पहले व्यक्ति से) *मेहरबान मैं आपसे अपने बर्ताव की माफ़ी चाहता हूँ। मैं आपको गलत समझा था। असल में ऐसे लोगों की वजह से होटल बदनाम होता है। उफ़!.....कितना ख़तरनाक था यह आदमी।.....बाप रे!..... डबल खूनी, आवारा, फ़रार।.....*(दृढ़ विश्वास से) *पक्का शोहदा था यह!*

पहला व्यक्ति : (जिसकी आँखों में अनायास ही आँसू भर आये हैं, रुंधे गले से) *हाँ, पक्का शोहदा था यह!*

[परदा गिरता है]

"गुड बाई अनीता !"

मसूरी
अप्रैल—४६

अनीताओं
को

[हिंदुस्तानी तौर पर सजा हुआ एक ड्राइंग-रूम। 'जन्नत की हक़ीक़त तो नहीं है, लेकिन दिल बहला लेने को कोई ख्याल भी बुरा नहीं है।' अपनी मिली-जुली-सी सजावट के बावजूद भी लगता है कि ड्राइंग-रूम ही है। बीचों-बीच दो-तीन बेंत की कुर्सियाँ हैं। सामने तीन पैर की एक छोटी-सी मेज। उस पर ताजे फूलों का एक गुलदस्ता और ऐश-ट्रे। पिछली दीवार से सटी छोटी मेज़ पर एक सुंदर-सा रेडियो।

दायें-बायें एक दूसरे के सामने दो दरवाज़े, जिन पर नीले परदे हवा से हिलते हुए। सोफ़े पर दो नवयुवक बैठे हुए हैं, सूटेड-बूटेड। एक किसी अंग्रेज़ी पत्रिका के पन्ने पलट रहा है और कभी-कभी दरवाज़े की ओर भी दृष्टि डाल लेता है, जैसे किसी की प्रतीक्षा कर रहा हो। दूसरा—जिसकी टाई ढीली है—सोफ़े पर अधलेटा, निश्चिंत भाव से सिग्रेट का धुँआ उड़ा रहा है।]

पहला युवक : (पत्रिका मेज़ पर फेंक, घड़ी देखता हुआ) *पाँच बज गये हैं।*

दुसरा युवक : (अन्यमनस्क) *कुछ कह रहे हो रोहित ?*

रोहित : (खीज कर) जी हाँ ! पाँच बज चुके हैं और अभी तक उनका कुछ पता नहीं है। (कुछ ठहर कर) हमें साढ़े चार बजे यहाँ आने को कह, खुद न जाने कहाँ चली गयीं, जाने कब तक आयेंगी ?

दूसरा युवक : (पूर्ववत्) आऽऽऽ जायेंगी।

रोहित : (अधिक खीज कर) आ तो जायेंगी ही। यह मैं भी जानता हूँ। कोई वहीं थोड़े ही बैठी रह जायेंगी। पर चीज़ यह है कि शो का टाइम तो निकलता जा रहा है।

दूसरा युवक : यह शो न सही, दस बजे वाले शो में चले जाना।

रोहित : (खीजा-सा) तुम तो जगदीश.....(शब्द ढूँढता है)

जगदीश : (मुस्कुराता हुआ) कह दो, कह दो। रुकते क्यों हो ?

रोहित : क्या कहूँ ? दिमाग तो और ही कुछ सोच रहा है।

जगदीश : (तुरंत) अनीता कुमारी की बाबत सोच रहा होगा—उसे वही सोचने दो। वह उधर सोचता रहेगा, तुम इधर जो कुछ कहना चाहते थे कह डालो।

रोहित : (परेशान हो कर) यार तुम मामले को समझ नहीं रहे हो।

जगदीश : (गंभीरतापूर्वक) अरे मामला क्या है, साधारण-सी बात है। मैं कह तो चुका हूँ, आपकी देवी जी—सॉरी—कुमारी जी अभी तक तशरीफ़ नहीं लायी हैं। इसलिए इस शो का प्रोग्राम कैंसिल कर

सेकेंड शो में चला जाय। दैट्स ऑल।

रोहित : (भुनभुना कर) ऐसा तो अब करना ही पड़ेगा, लेकिन हमारा यह टाईम तो बरबाद हो गया। ऐसे सुहावने समय हम यहाँ इस कैद में बिना चाय-पानी के मूर्खों की तरह बैठे हुए हैं। अब सेकेंड-शो की इंतजारी में न तो हम किसी दूसरी जगह जा सकते हैं और न ही और कुछ काम कर सकते हैं। (ठहर कर) अच्छा फ़र्स्ट ईयर खींचा हमारा!

जगदीश : (सव्यंग्य) अजी, आजकल की पढ़ी-लिखी सभ्य लड़कियों से इससे कम आशा ही क्या की जा सकती है?

[रोहित कोई उत्तर न दे, सकपका कर विवश भाव से फिर पत्रिका उठा लेता है किंतु उस की दृष्टि बराबर दरवाज़े की ओर ही रहती है। जगदीश पूर्ववत् सिग्रेट पी रहा है।

सहसा एक खटका। रोहित उत्सुकतापूर्वक दरवाज़े की ओर देखता है। एक सफ़ेद सुन्दर बिल्ली का प्रवेश। जैसे अपनी बुद्धिमता जतलाने के लिए वह 'म्याऊँ' करती है। रोहित लज्जित हो, अपराधी की भाँति उस ओर से दृष्टि हटा लेता है। जगदीश की तीव्र दृष्टि।]

जगदीश : चलिये, आर्या भी कोई, तो बिल्ली!

रोहित : (झेंप मिटाता हुआ) कितनी सुन्दर बिल्ली है!

जगदीश : (कुटिल मुस्कान, भौं पर बल दे कर) विलायती जो

हैं। शायद कुछ असर मालकिन का भी है।

रोहित : (जैसे जगदीश के अगले रिमार्क का इंतज़ार करता है)

जगदीश : जान पड़ता है मेक-अप भी कर रखा है। (ठहर कर) या कहिये कि मालकिन ने खुद ही प्रेम से इन्हें पोत दिया है, ताकि इनका चेहरा हमेशा साफ़ रहे। (एक क्षण बाद) बड़ी सफ़ाई-पसंद हैं इस घर की मालकिन। तुम्हारे घर में आते ही उसे साफ़ कर देंगी।

रोहित : कहे जाओ मित्र! हम तो इस समय सिर्फ़ सुनने का काम कर रहे हैं। (फिर पत्रिका उलटने-पलटने लग जाता है। कमरे में सन्नाटा)

जगदीश : (सहसा) तुम यह मैगज़ीन तेरहवीं बार पढ़ रहे हो। अब तक तो तुम्हें इसके तमाम एडवर्टीज़मेंट अच्छी तरह याद हो गये होंगे। क्यों?

रोहित : (विस्मयपूर्वक) तो तुम गिन रहे थे? (ठहर कर) फिर किया भी क्या जाय? नौकरानी भी हमें बैठने को कह न जाने कहाँ चली गयी।

जगदीश : (छेड़ते हुए) टोस्ट सेंक रही होगी।

रोहित : आप तो जैसे जलपान के लिए तैयार बैठे हुए हैं!

जगदीश : (साश्चर्य) अच्छा, तो क्या आप के इस वुड बी ससुराल में लड़के के दोस्तों को जलपान तक भी नहीं कराया जाता और वह भी तब जब कि उस दोस्त को उस लड़की से इंट्रोड्यूस कराने के लिए ही वहाँ लाया गया हो.....

रोहित : (ख़ामोश है, जैसे बात को इसी तरह टाल देगा)

जगदीश : (कुछ ठहर कर) बोर हो रहे हैं पार्टनर ; अब कितनी देर तक और बैठें ?

रोहित : (गंभीर हो कर) कुछ मिनट और देखे लेते हैं।

[जगदीश जेब से सिग्रेट और दियासलाई निकाल कर सिग्रेट सुलगाता है और डब्बी जेब में रख हाथ वहीं रहने देता है। वह रोहित की ओर आँख उठाता है जो अपलक दृष्टि से उसकी ओर देख रहा था। दोनों की दृष्टियाँ आपस में टकरा जाती हैं। रोहित कुछ लज्जित-सा हो कर चौदहवीं बार पत्रिका में आँखें गड़ा देता है। जगदीश ओंठों की मुस्कराहट बाहर न जाने दे, सिग्रेट का कश खींच, दूर की सोचने लगता है।]

रोहित : (सहसा रेडियो की ओर दृष्टि जाती है) रेडियो क्यों न लगा लें। खाली बैठे रहने से तो रेडियो ही सुनते बैठे रहना अच्छा है। (उठता है)

जगदीश : (लापरवाही से) हां, जब बोर ही होना है, तो क्यों न रेडियो सुन कर ही बोर हुआ जाय !

रोहित : (रेडियो के निकट जाता हुआ, मुस्कुरा कर) नहीं, इतने बुरे प्रोग्राम तो नहीं आते। (रेडियो लगाता है)

[कुछ क्षण बाद रेडियो बोलता है :—

"अब तक आँखों में झूम रहा जो, वह मधुमय गीत तुम्हारा है—आशिमा सान्याल के गाये हुए इस गीत के बाद आप अब कुमारी सूरजमुखी से बच्चन का एक गीत सुनिये। गीत की पहली पंक्ति है—बिसरा दो, माना, मेरी थी नादानी !"

फिर गीत प्रारंभ होता है :—

बिसरा दो, माना, मेरी थी नादानी !
मैं न कहूँगा मलयानिल ने
जो मुझको सिखलाया,
मैं न कहूँगा अलि-कलियों ने
जो कुछ पाठ पढ़ाया,
जो संकेत किये कोकिल ने
छिप कर मंजरियों से;
मुझको थी अपने कवि की आन बचानी !
बिसरा दो, माना, मेरी थी नादानी !
याद यहाँ रखने की चीज़ें
किरणों की मुस्कानें,
अम्बर में लहराती
तारों की नित नीरव तानें,
मधुर कल्पनायें मानव के
मन में उठने वाली;
मेरी भूलों की, मेरी पंक्ति निशानी !
बिसरा दो, माना, मेरी थी नादानी !
मस्ताने तूफ़ान अगिनती
तरुवर तोड़ गिराते,
नदियों के जोबन में कितने
घाट भवन बह जाते,
थोड़ा-सा उल्लास हृदय का
उनको दे आया था;
बंधन-मर्यादा मैंने पग-पग मानी !

बिसरा दो, माना, मेरी थी नादानी !
चली सरल-शुचि-सीधे पथ पर
किसकी राम - कहानी ?
कुछ अवगुन कर ही जाती है
चढ़ती बार जवानी !
यहाँ दूध का धोया कोई
हो तो आगे आये;
मेरी आँखों में फिर भी खारा पानी !
बिसरा दो, माना, मेरी थी नादानी !]

जगदीश : *बहुत सुन्दर ! बस अब स्विच ऑफ़ कर दो। कहीं कोई थर्ड-रेट कविता आ गयी तो इस सुन्दर गीत का तमाम मजा जाता रहेगा।*

रोहित : (स्विच आफ़ कर देता है) *तो तुम्हें गीत पसंद आया !*

जगदीश : (सिर हिलाता हुआ) *हाँ, बहुत ज़्यादा। अच्छा गीत था। क्यों, तुम्हें कैसा लगा ?*

रोहित : *हाँऽऽऽ, अच्छा लगा।*

जगदीश : (शरारती मुस्कराहट के साथ) *अच्छा लगा, या अच्छी लगी ?*

रोहित : *जी, गीत अच्छा लगा, और गाने वाली की आवाज अच्छी लगी। बस यही तो सुनना चाहते थे न तुम ? हो खुश !*

[जगदीश मुस्करा कर रह जाता है। कमरे में थोड़ी देर के लिए फिर नीरवता छा जाती है जो शीघ्र ही भंग हो जाती है। किसी के आने की

आहट। रोहित सोल्लास द्वार की ओर देखता है। चूड़ियों के खनकने की ध्वनि। जगदीश बेफ़िक्री से रोहित की ओर गर्दन मोड़ता है।]

रोहित : (आशापूर्वक) *कौन ?.....अनीता ?*

[घर की नौकरानी का जीर्ण-शीर्ण, मलिन वस्त्र पहने प्रवेश। सूखा चेहरा, भीगती आँखें। आयु लगभग पच्चीस वर्ष।]

नौकरानी : (भीत कंठ से) *जी, मैं हूँ तारा। देखने आयी थी, छोटी मालकिन आ गयी हैं या नहीं ?*

रोहित : (औसत स्पीड से तेज़) *तुम्हारी मालकिन तो अभी तक नहीं आयी हैं। (ठहर कर) सुनो तारा, जाते हुए वह कुछ बता गयी थीं कि कहाँ जा रही हैं और कब तक वापिस आयेंगी ?*

तारा : (रुक-रुक कर) *जी हाँ, उनकी सहेली ससुराल से यहाँ आयी हुई है। उनके कई बार ख़बर भेजने पर आज उनसे मिलने सिविल लैन्स गयी हुई हैं। जाते वक़्त मुझ से बोल गयी थीं कि जब (इशारा कर) आप आयें तो आपको बैठा लेना और कह देना कि छोटी मालकिन अभी आने ही वाली हैं।*

रोहित : (साँस भरते हुए) *अरे 'अभी' आते-आते भी तो पौन घंटा हो चला है !*

जगदीश : (सोफ़े की बैक पर अपनी कमर टिका देता है) *अर्ज किया न ! ज़नाना वायदा (वूमेन्स प्रॉमिज़) है। पूरा होने में काफ़ी टाइम लगेगा।*

रोहित : (कुछ सकपका कर) *तुम जा सकती हो तारा।*

"गुड बाई अनीता !"

[तारा मंथर गति से जाने लगती है। उसकी अदृष्ट वेदना रोहित और जगदीश से छिपती नहीं। रोहित कुर्सी से उठ खड़ा होता है।]

रोहित : (जाती हुई तारा से) *तारा, जरा सुनो तो।*

[तारा ठिठक जाती है और लौट कर रोहित के सामने आ जाती है।]

रोहित : (समवेदनापूर्वक) *तारा.....*(चुप हो जाता है, भाव-पूर्ण दृष्टि से तारा के अप्रतिम मुख की ओर देखता है। तारा दीन गाय-सी चुपचाप खड़ी फ़र्श की ओर देख रही है।) *क्या बात है तारा ?.....तुम बीमार हो क्या ?.....कुछ उखड़ी-उखड़ी-सी मालूम पड़ती हो।*

तारा : (कृतज्ञता के भार से जैसे दब गयी है, नेत्रों में थिरकते जल-बिंदुओं को आकार दे) *कुछ तो नहीं बाबू जी* (गला भर आता है) *इसलिए कि कहूँ तो बराबर और ना कहूँ तो बराबर.....*(थोड़ा रुक कर) *दो महीने से सोहन का बाबू खटिया पर पड़ा है। गैरहाजिरी होने से कारखाने वालों ने उसे नौकरी से हटा दिया है। मैं यहाँ सुबह से रात तक काम करती हूँ पर अट्ठारह रुपये में उसका और बच्चों का गुजारा नहीं कर पाती। बाबूजी कच्चे कुटुँब में क्या खर्च नहीं होता ? ऊपर से यह मँहगाई और जान खींचे ले रही है। वह न दवा का है न दारूका। न टहल ही हो पाती है—फुरसत ही नहीं मिलती। मालकिन से कई बार छुट्टी के लिए कहा पर*

'काम बढ़ा हुआ है, कौन करेगा ?' कह कर टाल दिया। इधर अपने भी शरीर की दसा ठीक नहीं। दो-तीन दिन से सोहन के बाबू की तबियत भी ज्यादा खराब है। साँस उखडी-उखड़ी-सी चल रही है। राम जाने क्या होने वाला है ? (मैले-फटे आँचल से आँसू पोंछती है)

जगदीश : (पिघल कर) चिंता न करो। इस से क्या बनेगा ? .....ईश्वर पर भरोसा रखो। वह सब भला करेगा। (एक अर्थ-भरी दृष्टि रोहित की ओर डाल कर) रोहित मेरा ख्याल है तुम तारा की मदद कर सकते हो।

रोहित : हाँ-हाँ तारा. मैं तुम्हारी छोटी मालकिन से जरूर कहूँगा। तुम्हें छुट्टी भी मिलेगी और तुम्हारी तनख्वाह भी बढ़ा दी जायगी। तुम बिल्कुल न घबराओ।

तारा : (कुछ घबरा कर) न-न बाबूजी, मालकिन से कुछ न बोलियेगा. नहीं तो वो समझेंगी कि मैंने पीठ पीछे शिकायत की है। मालकिन बहुत गुस्सा होंगी।

रोहित : (जगदीश की ओर देख) अच्छा तारा, तुम जाओ, अपना काम करो। हम सब कुछ ठीक कर लेंगे। समझीं ? जाओ, चिंता न करो।

तारा : (कृतज्ञ स्वर से) आप लोगों की बड़ी कृपा है बाबूजी।

[तारा का सिर झुकाये हुए प्रस्थान। द्वार के

निकट एक बार फिर उसकी चूड़ियाँ खनकती हैं। रोहित चौंकता है, फिर समझदारी से सिर नीचा कर लेता है।]

जगदीश : (कुछ सोचते हुए) *भई, मेरा ख़्याल ग़लत निकला। इस घर की मालकिन यानी मिस अनीता पूरी तरह सफ़ाई-पसंद नहीं हैं। देखो तो, अपनी बिल्ली की इतनी परवाह और देखभाल और अपनी नौकरानी की इतनी उपेक्षा और इतना अनादर। ढंग की धोती भी नहीं है उस गरीब के पास।*

रोहित : (पसीना न होने पर भी रूमाल से मुँह पोछने लग जाता है) *मैं क्या कह सकता हूँ ?*

जगदीश : (मुस्कुरा कर) *अच्छा रोहित, तुम्हारी और मिस अनीता की जान-पहचान कहाँ और कैसे हुई थी ?*

रोहित : (कुछ चाव से) *इन्हीं गर्मियों की छुट्टियों में, मसूरी में। मैं अपने कज़िन डॉक्टर मनोहर के यहाँ ठहरा हुआ था। उन दिनों इनकी बीमार माँ का इलाज, डॉक्टर भैया ही कर रहे थे। वहीं इनकी जान-पहचान भाभी से हुई। एक दिन यह भाभी के पास आयी हुई थीं—तभी भाभी ने इन्हें मुझ से परिचित करवाया।*

जगदीश : (आनंद लेता हुआ) *उस वक़्त तो ख़ूब झेंपे होंगे हज़रत।*

रोहित : *कौन मैं ? अजी राम का नाम लो। मैं तो तना बैठा था, ख़ूब मजे से।*

जगदीश : अच्छा, और मिस अनीता ?

रोहित : (मुस्कुराते हुए) अरे भाई, स्त्रियों की शर्म है क्या ? —पुरुषों को आकर्षित करने का साधन ! बस, शरमा तो यह भी नहीं रहीं थीं, सिर्फ़ उतनी ही शर्म कर रही थीं, जितनी से यह अधिक से अधिक आकर्षक लग सकें।

जगदीश : अच्छा फिर ?

रोहित : फिर क्या ? हम दोनों एक दूसरे की ओर खिंचने लगे। ज़्यादातर एक साथ ही रहने की कोशिस करते। साथ ही साथ घूमने जाते—लाइब्रेरी बाज़ार, कैम्टी फॉल्स, हैकमेन्स के बॉल-डांस..... अब और लोगों के साथ अनीता की माँ जी को भी हमारा पेयर सुहाने लग गया था।

जगदीश : (उत्सुकतापूर्वक) इसके बाद !

रोहित : (विजयोल्लास से) अब हम उस स्टेज पर पहुँच गये थे, जहाँ से तमाम दुनिया सुनहरी दीखती है। (गद्य-काव्य की भाँति) हम हमेशा अपने छोटे-से सुखमय संसार की कल्पना में लीन रहते थे—उस स्वप्निल संसार की कल्पना में—जहाँ हम दोनों (एक झटका-सा खा कर) नहीं-नहीं, हम तीनों—एक हमारा बेबी भी—प्रेमपूर्वक इधर-उधर विचरण करें, नक्षत्र-लोक तक पहुँच जायँ और वहाँ से सुन्दर तारे तोड़ कर अपनी झोली में भर लायँ, फिर उनकी मालायें बना कर एक दूसरे के गले में पहनायँ और कहें.....(सोचता है) और

कहें.....

[सहसा बिल्ली बोल उठती है—'म्याऊँ-म्याऊँ'। रोहित के स्वप्न में बाधा पहुँचती है। वह बिल्ली की ओर क्रोधित नेत्रों से देखता है, मानो उसे भस्म कर देगा।]

जगदीश : (मुस्कराता हुआ) कितनी सुन्दर बिल्ली है—मालकिन की प्यारी जो है। ख़ैर, हाँ रोहित, तो आगे क्या हुआ ?

रोहित : (बुझे दिल से) आगे क्या होता ? अनीता की माँ जी ने मेरी मौसी से बातचीत कर हमारा विवाह तय कर दिया। दिसंबर में अनीता के पिताजी के फ़ील्ड से छुट्टी में आने पर हमारा विवाह हो जायगा।

जगदीश : तुम भी रोहित, हो छुपे रुस्तम—मई में मिस अनीता से जान-पहचान हुई और अगस्त में शादी तय कर डाली।

रोहित : (झेंपता-सा) अजी, यह तो इत्तिफ़ाक की बात है।

जगदीश : (कुछ गंभीर हो) जो कुछ भी हो, की तुम ने जल्दी ही। ख़ैर, अच्छा यह तो बताओ, तुम उनसे विवाह तो करने जा रहे हो, लेकिन क्या तुम उनके स्वभाव व उनकी आदतों को परख चुके हो ? उनसे तुम्हें पूरी तौर पर संतोष है ?

रोहित : (तेज़ी से, जैसे भय खा रहा हो) हाँ, मुझे उनके स्वभाव व उनकी स्वतंत्र प्रकृति से कोई शिकायत नहीं है। (कुछ ठहर कर) मेरा ऐसा विश्वास है कि अनीता मेरे लिए एक योग्य पत्नी, और आदर्श

गृहिणी साबित होगी। जीवन के चरम लक्ष्य तक सफलतापूर्वक पहुँचने में मुझे अनीता से बहुत सहायता मिलेगी।

जगदीश : (सिर हिलाता हुआ) तो ठीक है। (पाँच सेकंड रुक कर) भई, मैं ने देखा व सुना है कि लव मैरिजेज़ शुरू में कितने ही सुखद क्यों न हों, आगे चल कर एक विडंबना मात्र बन जाते हैं। पति-पत्नी दोनों ही जीवन को नरक समझने लग जाते हैं और उस जंजाल से मुक्ति पाने के लिए तड़पने लगते हैं, और इसका कारण यही होता है कि विवाह से पहले वे एक दूसरे की आदतों से परिचित नहीं हो पाते। बाद में दोनों एक दूसरे की गलतियाँ पकड़ने लग जाते हैं और तब दोनों में से कोई भी एक दूसरे के लिए न्याय नहीं कर पाता।

रोहित : (कुछ सहम कर) नहीं-नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। हम ने बहुत सोच-समझ कर ही यह बात तय की है।

जगदीश : भली बात है। तुम खुद बुद्धिमान हो, मुझ से ज़्यादा सोच सकते हो।

[कमरे में काफ़ी अंधेरा हो चुका है। लाइट जलायी नहीं गयी है। उस धुँधले वातावरण में रोहित और जगदीश दोनों प्रेत-छायाओं के समान प्रतीत हो रहे हैं।]

रोहित : (घड़ी देख कर) सवा छः हो गये हैं।

जगदीश : होंगे ही। अनीताकुमारी के न आने के कारण घड़ी

रुकेगी थोड़े ही।

[सहसा बाहर मुख्य द्वार पर कुछ आहट। घोड़े की टापों की आवाज़, जैसे कोई ताँगा आया हो। नेपथ्य में बातचीत।]

युवती की आवाज़ : *नहीं-नहीं, बिलकुल ठीक दिये हैं। इससे ज़्यादा नहीं मिल सकते। जाओ अब जाओ।*

[अनीता और उसकी बीमार माता का प्रवेश। माता रुक-रुक कर चल रही हैं। अनीता ने उनका एक कंधा उन्हें सहारा देने के लिए पकड़ रखा है।

अनीता अठारह या उन्नीस-वर्षीय एक सुंदरी युवती। आधुनिक फ़ैशन के अनुसार उसने फूलदार कमीज़ और सलवार पहन रखा है। आसमानी रंग का दुपट्टा लापरवाही से वक्षःस्थल पर पड़ा हुआ, आकर्षक ढंग से उठे हुए उरोजों के साथ खिलवाड़-सा करता प्रतीत होता है।

अनीता ने काफ़ी स्ट्रौंग मेक-अप कर रखा है। ज़्यादा पाउडर कुछ भद्दा-सा मालूम हो रहा है। भौंहें बनी हुई हैं, ओंठ लिपस्टिक से लाल हैं, और बाल अँग्रेज़ी ढंग से सवारे हुए।

रोहित और जगदीश खड़े हो जाते हैं। अनीता का चौंक उठना।]

अनीता : (बटन दबा कर) *ओ-हो, आप हैं। नमस्ते।* (जगदीश को भी) *नमस्ते। माफ़ कीजियेगा, बहुत देर हो गयी। यह कमबख़्त ताँगेवाला.....*

रोहित : (आगे कहने का अवसर न दे) *नहीं जी, कोई बात नहीं। यह तो अक्सर हुआ ही करता है।* (माताजी की ओर मुड़) *माँजी नमस्ते।* (माँजी के सिर हिलाने पर) *माँजी भी आज बाहर चली गयीं थीं? अब*

कैसी तबियत है माँजी की ?

अनीता : (आँखें नचा कर) अब ठीक है, तभी तो चल सकीं। अच्छा, आप लोग बैठिये। मैं माँजी को लिटा कर अभी आती हूँ।

[अनीता का माँजी के साथ दूसरे दरवाजे से प्रस्थान। पहले दरवाजे से ताँगेवाले का एक मैली बनियान और तहमद पहने हुए प्रवेश]

रोहित : (मालिकाना रोब से) क्या है ? भीतर क्यों आये हो ?

ताँगेवाला : हजूर मेम सा'ब से हिसाब के वास्ते आया हूँ।

रोहित : (गर्म हो कर) कैसा हिसाब ? क्या तुमको किराया नहीं मिला है ?

ताँगेवाला : हजूर, मिला तो है, लेकिन पूरा पैसा नहीं मिला है।

रोहित : (मुँह बिचका कर) मिला भी है और पूरा भी नहीं मिला है। कैसे ?

ताँगेवाला : मालिक, आध घंटे तो वहाँ बँगले पर रुकवाया, फिर दो रुपया तय करके यहाँ सवा रुपया पकड़ा दिया। हम तो सा'ब बाल-बच्चेदार आदमी हैं, ऐसे तो भूखों मर जायेंगे।

[अंदर से अनीता का प्रवेश। ताँगेवाले को खड़ा देख कर क्रोध से लाल हो जाती है।]

अनीता : (सक्रोध) तुम गये नहीं ? यहाँ बैठे लेक्चरबाज़ी कर रहे हो ?

ताँगेवाला : मेम सा'ब, हमारा पैसा चुकता हो जाय, हम चले जायेंगे।

अनीता : (रोहित की ओर घूम) *सी द फ़न रोहित* (रोहित, ज़रा तमाशा देखो), *पौन घंटा डफ़रिन रोड पर ताँगा रोक कर इस ने हमें लेट कर दिया और अब फिर पूरे पैसे माँगता है। इसने हमें दूसरे ताँगे में भी नहीं आने दिया।*

ताँगेवाला : (रोहित से) *हजूर वक़्त की बात थी। डफ़रिन रोड पर पहिये की कीली निकल गयी। उसे ठीक करने में देर हो गयी। अब मालिक आधे रास्ते तो ले आया था—थोड़ी दूर के वास्ते अपनी सवारी और मिहनत कैसे छोड़ देता ?*

रोहित : *ठीक है, लेकिन तुमने देर की और इसीलिए किराया कम मिला।*

ताँगेवाला : (जैसे दुआ दे रहा हो) *लेकिन सरकार.....*

अनीता : (बुरी तरह चिढ़ कर) *तुम बेकार हुज्जत कर रहे हो जी। जो कुछ तुम्हें दिया गया है वह बिल्कुल ठीक है। जाओ, अब एक भी पैसा ज़्यादा नहीं मिल सकता।*

ताँगेवाला : (अपनी मुट्ठी के पैसे फेंककर) *बहुत अच्छा मेम सा'ब। आप यह पैसे भी रख लीजिये। आप के और काम में आ जायेंगे।* (पीछे देखे बिना दरवाजे की ओर बढ़ता है)

[अनीता का चेहरा काला पड़ जाता है, परंतु शीघ्र ही वह अपने को सम्हालने का प्रयत्न करती है।

जगदीश अपनी ओर सहायता के लिए देखते रोहित को, अनीता कुमारी की आड़ में, उसकी जेब

की ओर इशारा करता है।]

रोहित : (जेब से पर्स निकालता हुआ) बड़े मियाँ, ज़रा सुनना।

[ताँगेवाला वापिस आता है। रोहित उसके हाथ में एक रुपया पकड़ा देता है। वह ज़मीन से भी पैसे उठा लेता है और सलाम कर चला जाता है। अनीता कुमारी का पसीना पोंछना।]

रोहित : (चापलूसी के ढंग पर) कितना बदतमीज़ था यह। दरअस्ल में इन नीचे लोगों के मुँह लगना अपना ही अपमान कराना है। इनसे तो ज़्यादा बहस ही नहीं करनी चाहिए।

अनीता : (कुछ साहस पाती हुई) ठीक है, लेकिन यहाँ पैसों का नहीं प्रिंसिपल्स का सवाल था। पैसे तो और ज़्यादा भी दिये जा सकते थे उसे, लेकिन इससे प्रिंसिपल्स न टूट जाते?

[पृष्ठ भूमि में ताँगे के जाने की आवाज़।]

रोहित : हाँऽऽऽ, लेकिन कभी-कभी ऐसे अवसर भी आ जाते हैं, जब कि अपने प्रिंसिपल्स ताक में रख देने पड़ते हैं। यह मौक़ा भी बहुत कुछ ऐसा ही था। (बात का रुख बदलते हुए) ख़ैर, छोड़ो इन बातों को। तुम्हारा शायद जगदीश से परिचय नहीं है। आप हैं मिस्टर जगदीश माथुर, मेरे सहपाठी और मित्र। (जगदीश की ओर मुड़) और आप हैं अनीता कुमारी.....मेरी होनेवाली.....

[अनीता और जगदीश एक दूसरे की ओर देख कर हाथ भर जोड़ देते हैं, मुँह से कुछ नहीं कहते। तीनों बैठ जाते हैं।]

अनीता : (जगदीश से) *आपसे मिलकर बहुत प्रसन्नता हुई। रोहित अक्सर आपका ज़िक्र किया करते थे।*

जगदीश : *गालियाँ दिया करता होगा मुझे ?*

अनीता : *नहीं जी, तारीफ़ किया करते थे।*

जगदीश : (साश्चर्य) *अच्छा ! क्या कहता था ?*

अनीता : *बहुत कुछ। यही कि आप बहुत अच्छी बातें करते हैं और बातों-बातों में दूसरे को बनाया खूब करते हैं.....*

जगदीश : (बात काट कर) *इस समय तो आप ही मुझे बना रही हैं।*

अनीता : *तो लीजिये, मैं आगे कुछ न कहूँगी.....*

जगदीश : (जल्दी से) *नहीं-नहीं, मेरा मतलब यह न था। मुझे दरअस्ल आपकी बात सुन कर आश्चर्य हुआ। रोहित और मेरी तारीफ़ करे।.....मुझे तो अब भी विश्वास नहीं होता। यह तो गालियाँ ही देता होगा मुझे !*

अनीता : (फुर्ती से) *तो क्या आप लोगों के बीच कोई ऐसा रिवाज चालू है कि आप लोग अपने परिचितों के यहाँ जाकर अपने मित्रों को गालियाँ दिया करें ? .....निश्चय ही तब तो आप भी अपने परिचितों में रोहित का ज़िक्र करते हुए उसे गालियाँ देते होंगे !*

रोहित : (ठहाका मार हँसते हुए) खूब भई खूब ! कहो जगदीश अब क्या कहते हो ?

जगदीश : (कुछ लज्जित भाव से मुस्कराते हुए) बधाई देता हूँ रोहित, अभी से तुम्हारी हिमायत शुरू हो गयी है।

अनीता : (शरमाने का नाट्य करती हुई) आज की देर के लिए मैं क्षमा चाहती हूँ मिस्टर माथुर। मुझे दुःख है मेरे कारण आप लोगों को कष्ट हुआ।

जगदीश : (तत्परता से) अरे नहीं, कोई बात नहीं। हम तो बैठे इतज़ारी के मजे लूटते रहे। वचन का गीत सुनते रहे। क्यों रोहित ?

रोहित : (चौंक कर) हाँ-हाँ, ठीक तो।

अनीता : अच्छा, आप लोग बैठियेगा। मुझे ज़रा इजाज़त दीजिये, मैं अभी आती हूँ।

[अनीता का अनियमित वेग से प्रस्थान। जगदीश आराम से बैठता है।]

जगदीश : क्यों पार्टनर, मसूरी में भी मिस अनीता रिक्शे के कुलियों से किराये पर इसी तरह झगड़ा कर बैठती होंगी ?

रोहित : (जैसे घबरा कर) नहीं-नहीं। वहाँ कभी कोई ऐसी बात नहीं हुई।

जगदीश : हाँ होती भी कैसे ? वहाँ तो तुम्हारा बटुआ खुलता होगा ! क्यों ? (उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना) अच्छा, एक बात तो बताओ। शादी के बाद बच्चों के संबंध में क्या राय है उनकी ? तुम ने

पूछा तो होगा !

रोहित : (झेंपता हुआ) हाँ ऽ ऽ ऽ. ज़्यादा बच्चे तो गरीबी और दुर्भाग्य की निशानी होते हैं न ? एक या दो काफ़ी हैं।

जगदीश : बड़े भाग्यशाली हो भाई। अभी से बच्चों की चिंता से बरी हो गये। अच्छा भी है। नहीं तो हज़रत, बच्चा खिलाते-खिलाते नाक में दम आ जाता, क्योंकि अंग्रेजी पढ़ी-लिखी बीवियाँ तो यह काम करतीं नहीं। (रुक कर) तुम्हें शायद याद होगा, उस रोज प्रोफेसर राय क्लास में अपनी आप-बीती सुना रहे थे।

[सहसा अनीता का प्रवेश। पीछे तारा ट्रे में चाय ले कर आती है और मेज पर रख देती है।]

जगदीश : जी, यह तकलीफ क्यों ?

अनीता : (मुस्करा कर) जी, यह तकलीफ नहीं, चाय है।

रोहित : तुम भी बैठो न अनीता।

अनीता : हाँ, बैठती हूँ। (तारा की ओर मुड़) तुम अब क्यों खड़ी हुई हो ? जाओ।

[तारा का उदास भाव से प्रस्थान। अनीता चाय बना कर पहले जगदीश को और फिर रोहित को देती है। तीसरा प्याला स्वयं लेती है।]

जगदीश : (चाय पीता हुआ) चाय बहुत सुन्दर बनी है।

अनीता : (मुस्करा कर) धन्यवाद। आप मुँह देखे की तारीफ तो नहीं कर रहे हैं ?

जगदीश : (कुछ गंभीर होकर) नहीं, ऐसी मेरी आदत नहीं।

बढ़िया चीज को बढ़िया कहना ही पड़ता है।

अनीता : यही बात तो है, चाय की पत्ती बढ़िया हैं, देहरादून की हैं। अबकी बार हम वहाँ से लाये हैं। (जगदीश को प्याला रखते देख) दूसरा प्याला लीजिये।

जगदीश : नहीं, धन्यवाद। बढ़िया चीज थोड़ी ही बहुत होती है। (जेब से सिग्रेट की डब्बी निकालता है, देखता है—खाली है) अच्छा, मुझे तो आप लोग जरा इजाजत दीजिये। मैं सिग्रेट लेकर अभी आता हूँ।

अनीता : (कृत्रिम सौजन्यता से) तो आप क्यों तकलीफ करते हैं? मैं माली से मँगवाये देती हूँ। (माली को बुलाने का उपक्रम)

जगदीश : (खड़ा हो कर) नहीं-नहीं, रहने दीजिये। मैं खुद ही ले आऊँगा। इस बहाने जरा टहलना भी हो जायगा। बैठे-बैठे कुछ जड़ता-सी छा गयी है।

[जगदीश मस्त चाल से बाहर चला जाता है। अनीता कुमारी का सोफे पर रोहित के पास आ बैठना।]

अनीता : (आवाज़ देकर) तारा, ओ तारा! यह चाय के बर्त्तन ले जा। (रोहित से उसके हाथ पर हाथ रख) आज तुम कुछ खोये-खोये से लगते हो।

रोहित : (फीकी हँसी हँसता हुआ) नहीं तो। मैं तो बिल्कुल ठीक हूँ।

अनीता : (बन कर, जैसी कि औरतों की आदत होती है) ख़ाक

ठीक हो। चेहरा बतला रहा है कि मन में कुछ छिपाये बैठे हो।

रोहित : (कविता की लय में) आज मेरे दिल में दर्द हो रहा है।

अनीता : (साश्चर्य) दर्द ? किस तरह का ?

रोहित : ठीक उसी तरह का, जैसा तुमसे परिचय होने के पहले हुआ करता था। बीच में यह मिट गया था। आज फिर हो रहा है। जरूर कोई नई घटना होने वाली है।

अनीता : (परेशान-सी हो कर) नई घटना ?.....कैसी नई घटना ?.....मैं कुछ समझी नहीं डियर !.....

रोहित : आश्चर्य है; इसमें न समझने लायक बात ही कौन सी है ?

[तभी तारा का प्रवेश। अनीता कुमारी के बोलने में व्याघात उपस्थित होता है। कुछ न कह सकने के कारण आवेश में वह उँगलियाँ चटकाने लग जाती है। तारा चाय के बर्त्तन अंदर ले जाती है।

अनीता कुमारी रोहित की ओर मुड़ कर कुछ कहने का प्रयत्न करती है।

सहसा एक धमाका। चीनी मिट्टी के बर्त्तनों के फर्श पर गिरने और चूर होने की आवाज। रोहित और अनीता कुमारी दोनों का चौंक पड़ना।]

अनीता : (विकल स्वर से) क्या कर दिया तारा ?

रोहित : (समवेदनापूर्वक) शायद बर्त्तन टूट गये हैं बेचारी से।

[तारा का अपराधिनी की भाँति प्रवेश। जीर्ण धोती घुटनों पर से फट गयी है। दाहिने हाथ की चूड़ी टूट कर हाथ में गड़ जाने के कारण वहाँ से खून आ गया है। अनीता के सामने भयभीत हो, फर्श पर दृष्टि किये खड़ा हो जाना।

सहसा जगदीश का प्रवेश। कमरे का संक्रांति-मय वातावरण देख, वहीं द्वार के निकट ठिठक कर खड़ा हो जाता है। कोई उसकी ओर ध्यान नहीं देता।]

अनीता : (डाँटती हुई) *क्यों री, क्या हाथ टूट गये थे तेरे, जो तू चाय के खाली बर्त्तन भी न ले जा सकी ?*

तारा : (काँपते स्वर में) *मालकिन उधर पानी बिखरा हुआ था—पैर फिसल गया।*

रोहित : (बीच में) *पैर फिसल गया ? कहीं चोट तो नहीं आयी ?*

तारा : *नहीं बाबू जी, चोट तो नहीं लगी, बाकी बर्त्तनों का नुकसान हो गया।*

अनीता : (ताने से) *मैं कहती हूँ तारा, जब तुझ से काम नहीं होता, तो तू घर जाकर क्यों नहीं बैठती ? मुझे भी इस झगड़े से छुट्टी मिलेगी और तुझे भी।*

तारा : *मालकिन घर बैठ जाऊँगी, तो बच्चों को कैसे पालूँगी ?*

अनीता : *तो बच्चों को पालने के लिए तुम इस तरह हमें नुकसान पहुँचाती रहोगी ?*

रोहित : जाने भी दो अनीता। जो हो गया सो हो गया। प्याले तो टूट ही गये, अब बेकार बेचारी के सिर पड़ रही हो।

अनीता : (चिढ़ कर) अर्जी, यह बहुत सिर चढ़ गयी है। काम में बहुत ज्यादा लापरवाही करने लग गयी है। इतना सुन्दर टी-सेट तोड़ कर रख दिया। इस वार-टाइम में ऐसा अब मिलने से रहा। (रुक कर) फिर ऊपर से मुँह लगती है।

तारा : (विनीत स्वर में) मालकिन गलती हो गयी, आगे ऐसा न होगा।

अनीता : कौन जाने ? शुरू से तो यही कहती आयी हो। इन बार तुम्हें कुछ न कुछ सजा जरूर मिलनी चाहिये। जाओ, इस बार तुम्हारी तनख्वाह से पाँच रुपये जुर्माने के कट जायेंगे।

तारा : (गिड़गिड़ा कर) मालकिन बेमौत मर जाऊँगी। छोटे-छोटे बच्चे.....

अनीता : जाओ-जाओ, बेकार सिर मत खाओ। जाओ...

[तारा का आँसू पोंछते हुए, चलने को तैयार होना।]

अनीता : (रोहित से) देखा डियर, इतना बढ़िया टी-सेट चकनाचूर कर दिया।

रोहित : (जाती हुई तारा की ओर देखते हुए, समवेदनापूर्वक) तारा !

[तारा पीछे मुड़तो है। अनीता का आश्चर्यपूर्वक रोहित को देखने लग जाना। रोहित खड़े होकर अपने

बटुए से रुपये निकालता है।]

रोहित : (पाँच रुपये के दो नोट तारा को देता हुआ) लो तारा! इससे अपनी मालकिन का जुर्माना चुका देना और बाकी अपने बच्चों के लिए रख लेना।

[तारा अनीता की ओर देखती है और झिझक जाती है।]

रोहित : न-न इनकार न करो। लो, अरे लो, झिझकती क्यों हो?

[तारा कृतज्ञ नेत्रों से देखती हुई रुपये ले लेती है और धीरे-धीरे अंदर चली जाती है।]

अनीता : (सक्रोध) इस का क्या मतलब रोहित?

रोहित : (सव्यंग्य) आश्चर्य है, आज तुम मेरी बातों का मतलब नहीं समझ पा रही हो।

अनीता : (सदुःख) मैं जानना चाहती हूँ, तुम्हें इस प्रकार मेरा अपमान करने से क्या मिला?

रोहित : (निर्भयतापूर्वक) मैं ने तुम्हारा अपमान नहीं किया, लेकिन अगर तुम यही समझती हो, तो यही ठीक है। ज़रा दिल पर हाथ रख जवाब देना—क्या तुम ने आज अपनी उच्च शिक्षा, और अपनी योग्यता व सभ्यता का अपमान खुद नहीं किया है?

अनीता : (पराजय न स्वीकार करते हुए) कम से कम तुम से मुझे यह आशा बिल्कुल न थी रोहित!

रोहित : (तेज़ी से) कम से कम तुम से भी मुझे यह आशा बिल्कुल न थी अनीता! (शिथिल-सा हो कर)

उफ़ ! कितनी कठोर हो तुम ! ग़रीबी से पिसी हुई तारा पर जुर्माना कर तुम ने कितनी निर्ममता का परिचय दिया है। ऐसे व्यवहार की, तुम्हारी जैसी पढ़ी-लिखी युवतियों से मुझे बिलकुल भी आशा न थी। उस की परिस्थितियों को देखते हुए तुम उसे सहज ही क्षमा कर सकती थीं।

अनीता : (सव्यंग्य) अपनी परिस्थितियों की उसे ख़ुद भी फ़िक्र है ? जानते हो, इस गरीबी पर भी वह पाँचवें बच्चे की माँ बनने जा रही है ?

रोहित : (संयमित स्वर में) तब तो वह और भी अधिक दया की पात्र है। माँ बनना पाप नहीं है। माँ बन कर ही स्त्री अपना जीवन सार्थक करती है। स्त्री का मातृत्व नहीं, स्त्री का बंध्यत्व उसके जीवन का सब से बड़ा अभिशाप है !

अनीता : (चोट खाये सर्प की भाँति फुफकार कर) ठीक है आपकी फ़िलॉस्फ़ी। लेकिन जानवरों की तरह बच्चे पैदा करना, और वह भी गरीबी में, जब कि अपने खाने के लाले पड़े हों, स्त्री जीवन की सार्थकता कभी नहीं कहा जा सकता !

रोहित : कुछ भी हो, वह तुम्हारी नौकर है। तुम्हारे और उसके बीच एक सम्बन्ध है। इस नाते उस पर दया करना और उसकी मदद करना तुम्हारा कर्त्तव्य होना चाहिए। वैसे मनुष्यता के नाते भी तो यह हमारा कर्त्तव्य है।

अनीता : (व्यंग्य से) आज गरीबों के लिए बहुत दया उमड़ रही है तुम्हारे दिल में !

रोहित : (अनमुनी कर) अच्छा हो मिस अनीता, यदि हम खुशी-खुशी अपना यह विवाह-सम्बन्ध तोड़ लें। किसी गलती के करने के पहले ही, उस गलती का अवसर न आने देना बेहतर होगा। इस विवाह से शायद हम लोगों को संतोष न हो सके—कम से कम मुझे तो न हो सकेगा।

अनीता : (घबरा कर) रोहित ! रोहित तुम्हें हो क्या गया है ? तुम आज यह बहकी-बहकी बातें क्यों कर रहे हो ?

रोहित : क्या करूँ ? हिंदू हूँ, अपने पुराने संस्कार नहीं मिटा सकता। अनीता, मुझे गृहलक्ष्मी चाहिये—आदर्श गृह-स्वामिनी और आदर्श माता—रोमांस के गीत अलापने और कॉफ़ी हाउस व पिक्चर्स में साथ ले जाने के लिए स्वीट हार्ट नहीं.....

अनीता : (रोहित को झकझोरते हुए) रोहित डियर, क्या ड्रामा कर रहे हो ? ज़रा होश में आओ। मुझ पर विश्वास.....

रोहित : (बात काट कर) हाँ, अनीता, तुम पर ही तो विश्वास था, तुम नये ज़माने की तितलियों की तरह न होगी। तुम दिल की पीड़ा तो महसूस करती होगी, लेकिन तुम भी.....(रुक कर) अपना दर्द से भरा यह दिल तुम्हारे क़दमों में रखना चाहा था, लेकिन देखा, तुम्हारे क़दमों में तारा

के पाँचवें बच्चे की लाश पड़ी है.....

अनीता : (सहम कर) उफ़, मैं पागल हो जाऊँगी !.....

रोहित : काश, मैं पागल हो सकता !.....

अनीता : (खड़े हो कर) रोहित डियर !

रोहित : (खड़े होते हुए) अनीता डार्लिंग ! यह दिल का दर्द.....(रुक कर) ख़ैर जाने दो। अब मैं चलूँगा। इस सम्बन्ध में माँ जो को मैं पत्र द्वारा सूचित कर दूँगा।

[जगदीश सहसा आगे बढ़ता है।]

जगदीश : (रोहित से) तुम फिर जल्दी कर रहे हो पार्टनर !

रोहित : (एक क्षण सोच कर) लेकिन इस बार पहले की तरह जल्दी करने के लिए मुझे अफ़सोस न होगा—यह विश्वास रखो।

जगदीश : (इतमीनान से) सोच लो—एक बार फिर सोच लो।

रोहित : (दृढ़तापूर्वक) ख़ूब सोच चुका हूँ। अब और ज़्यादा सोचूंगा तो शायद डिग जाऊँगा—इंसान बहुत कमज़ोर होता है !

जगदीश : अगर ऐसा है तो ठीक है। (कुछ ठहर कर) अच्छा, अब तो चलना चाहिये। या अभी और कुछ रह गया है ?

रोहित : (निर्विकार भाव से) नहीं, चलें फिर।

[रोहित मुड़ता है। अनीता नीरव व निश्चल खड़ी है। उसका चेहरा पुराने कागज की तरह पीला पड़ गया है।]

जगदीश : (बहुत मस्ती के साथ) *राइटो !* (अनीता की ओर मुड़ कर) *अच्छा तो नमस्ते अनीता जी, नमस्ते !* (चलने लगता है)

रोहित : (कोट के कालर खड़े करता है) *ऑल राइट।* (दरवाज़े की ओर बढ़ता हुआ; हाथ हिला कर अत्यंत लापरवाही से) *गुड बाई अनीता !*

[रोहित और जगदीश का प्रस्थान। अनीता कठिनाईपूर्वक खडी रहती है। जगदीश और रोहित के बाहर जाते ही आहत-सी सोफे पर गिर पड़ती है और हाथों में मुँह छिपा सिसकियाँ भरने लगती है।]

[परदा गिरता है]

एरफ़ोडेल

इलाहाबाद
अक्तूबर—४६

सुरेखा
को

पहला दृश्य

[आधुनिक ढंग के बँगले का एक सुसज्जित कमरा। कमरे की प्रत्येक वस्तु से वैभव और ऐश्वर्य टपक रहा है। बेल-बूटों से चित्रित दीवारें, जिन पर प्रसिद्ध कलाकारों की २॥' × १।' साइज़ की तीन पेंटिंग्स; विन्सी का एक इटालियन लैंडस्केप। दोनों खिड़कियों पर चाईना सिल्क के पर्दे पड़े हैं। एक खिड़की के पास सोफे की बग़ल में एक ऊँचा स्टूल है, जिस पर कागजी फूलों का एक गुलदस्ता, टेलीफ़ोन, और रंगीन फ्रेम से मढ़े दो चित्र हैं। उनमें एक अत्यंत सुन्दर रमणी का क्लोज़ अप है और दूसरा उसी का अपने पति के साथ विवाह के वस्त्रों में ही। इधर-उधर दो कुर्सियाँ और हैं। उन पर की साफ़ गद्दियाँ बेतरतीबी से पड़ी हैं। टेलीफ़ोन—सोफ़े और कुर्सियाँ—दोनों जगह से एटेन्ड किया जा सकता है।

दाहिने दरवाज़े [जो दिखाई नहीं देता] के निकट लकड़ी का एक क़ीमती स्टैंड रखा है। उसकी बेस पर एक भद्र पुरुष का प्लास्टर

का अधूरा बस्ट रखा हुआ है। प्रतीत होता है, जैसे यह प्रतिदिन बनाया जा रहा हो।

कमरे के बीच में एक गोल मेज़ है, जिस पर काँच जड़ा हुआ है। उस पर कुलाँचे भरते हुए हिरन की काँसे की एक बहुत नफ़ीस प्रतिमा। हिरन चकित दृष्टि से देख रहा है जैसे किसी वर्जित प्रदेश में आ गया हो!

सोफ़े पर दो सज्जन विराजमान हैं। एक सिर्फ़ कमीज़-पतलून में ही, दूसरे पूरे सूट में। कमीज़-पतलून वाले सज्जन के क्लीन शेव्ड चेहरे पर गृहस्वामी का दर्प है। स्टूल पर का चित्र उनका है। अधूरा बस्ट भी उनका ही प्रतीत होता है। उम्र तीस-बत्तीस के लगभग। साधारण सुन्दर, सभ्य और सचेतन प्रतीत होते हैं। चेहरे पर, जो कि साँवला रंग लेता जा रहा है, किसी हद तक परेशानी के कुछ बल।

दूसरे महाशय भी इसी उम्र के। मुस्कराता किंतु जिज्ञासु चेहरा। मूछें हैं—'ते' के नुक़्तों की भाँति; जैसे दो मक्खियाँ नाक के नीचे बैठी हों। बात करते-करते, दायें हाथ की पहली उँगली को नाक से छुआते हैं।

समय, प्रातः आठ बजे के लगभग।]

दूसरे महाशय : *तो यह बातचीत है, कपूर साहब।*

मि० कपूर : (कुछ उदास स्वर से) *हाँ भाई, यही रोने-धोने हैं।*

दूसरे महाशय : (आश्चर्य प्रकट करते हुए) *क्या कह रहे हो कपूर? इसे रोना-धोना मत कहो। यह सब तो मामूली सी बातें हैं। जरा शांति रखने और समझदारी से काम करने पर धीरे-धीरे सब बातें ठीक हो जायेंगी।*

मि० कपूर : (निराशापूर्वक) नहीं आनंद, यह तो ज़िंदगी भर का रोना है। मैं तो अभी से ही तंग आ गया हूँ। कभी-कभी सोचता हूँ और खूब देर तक सोचता हूँ कि आखिर यह शादी मैं ने की ही क्यों ?

मि० आनंद : तुम यह सोच कर बहुत बड़ी गलती करते हो कपूर। भला कोई शादी किस लिए.....मतलब यह कि किसी तरह का फायदा उठाने के लिए करता है ?

मि० कपूर : कोई फायदा उठाने के लिए नहीं, तो कम से कम किसी सुख की आशा से तो करता है, लेकिन यहाँ हैं कि.....

मि० आनंद : तुम बार-बार बेकार ही इन चीजों का ख्याल करते हो।

मि० कपूर : तुम बार-बार ख्याल करने को कहते हो..... (रुकता है, जैसे आनंद के उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा हो) यह चीज तो एक सेकेंड के लिए भी दिल से नहीं हटाई जा सकती। आखिर हम पति-पत्नी हैं—एक दूसरे के लाईफ़-पार्टनर—फिर बीच में खामोशी और चुप्पी की दीवार कैसी ?.....जैसे वे परायी हैं, मैं उनके लिए अजनबी हूँ। गिनी-चुनी बातें, और वे भी बिज़नेस-मैन की तरह जिसका एक-एक मिनट कीमती हो। फिर वही पहाड़ जैसी खामोशी। क्या इस बँगले पर, क्या मेरी ज़िंदगी पर, क्या घर के नौकरों-चाकरों पर

जैसे मनहूसियत का साया पड़ गया हो। सब सहमे-सहमे और खामोश रहते हैं, जैसे बहुत कुछ होने वाला है!

मि० आनंद : (उँगली नाक से छुआते हुए) क्यों कपूर, शादी से पहले तुम एक-दूसरे से परिचित तो होगे? तब भी यह इतनी ही खामोश और गंभीर रहती थीं?.....

मि० कपूर : (याद-सा करता हुआ) हाँ, मैं ने मार्क किया था कि यह कुछ खामोश प्रकृति की हैं। लेकिन उस समय मैं ने सोचा था कि इसका कारण इनका ताज़ा वैधव्य है और बहुत कुछ इनकी हृदयग्राही अस्थिरता भी, जिसका अनुभव कलाकार उस समय करते हैं, जब कि वे दत्तचित्त हो कोई कृति समाप्त नहीं करते होते। (रुकता है; रूमाल से मुँह पोंछ कर) किंतु अब मैं जान गया हूँ कि मैं इस रमणी को कभी भी न समझ पाया था, और न ही नेत्रों में छिपी इनकी गूढ़ व्यथा को, जिसने सबसे पहले मुझे अपनी ओर आकर्षित किया था।

मि० आनंद : (कुछ विचारते हुए) हूँ, तो विवाह के बाद ये दो-ढाई महीने कैसे गुजरे?.....विवाह के बाद कुछ तो परिवर्त्तन हुआ होगा इनमें? कम से कम कुछ दिनों के लिए?.....

मि० कपूर : (खड़े होते हुए) विवाह के बाद के पहले दो-तीन महीने होते हैं एक दूसरे को जानने के; एक

दूसरे को समझने के; एक दूसरे की प्रकृति और मनोभाव पढ़ने के.....(जेब में हाथ डालते हुए) और यह स्वाभाविक था कि सतह में कुछ न कुछ तो अवश्य हो, विशेषतः उस स्त्री के अंतर में, जिसे कुछ ही समय पहले एक गहरा मानसिक आघात पहुँचा हो।

मि० आनंद : (दिलचस्पी प्रकट करते हुए) फिर ?

मि० कपूर : (पतलून की जेबों से हाथ निकाल सोफ़े पर बैठते हुए) किंतु इनकी यह नारी-प्रवंचना इतनी स्वाभाविक थी कि मैं यह विश्वास करने को बाध्य हो गया कि विगत घटनाओं की इनके कोमल हृदय पर कोई छाप नहीं है। वह पिछला सब कुछ विस्मरण कर चुकी हैं.....और मैं यही सोच प्रसन्न होता रहा उस दिन तक, जिस दिन कॉफ़ी-हाउस में इन्होंने मुझे बतलाया कि उस विवाह से पहले भी दो बार इनका विवाह हो चुका है।

मि० आनंद : (मुँह फाड़, सविस्मय) उस विवाह से पहले भी दो बार विवाह हो चुका है!.....तो तुम्हारे साथ यह विवाह इनका चौथा विवाह है ?.....

मि० कपूर : (जैसे सब कुछ सुनने व सहने को प्रस्तुत हों) हाँ, चौथा विवाह है, तीसरा नहीं..... (ठहर कर) और सुन कर मैं हैरत में पड़ गया। यह भी न समझ सका कि कॉफ़ी-हाउस में यह बात कहने का क्या तुक था ?

मि० आनंद : उस समय तुम ने इनसे कुछ कहा था ?

मि० कपूर : हाँ, यही कि 'मैं ताज्जुब करता हूँ, तुम ने मुझे यह बात पहले क्यों न बतायी ? मैं तो समझता था कि डाक्टर भवानीशंकर तुम्हारे दूसरे पति थे !'

मि० आनंद : उन्होंने क्या जवाब दिया ?

मि० कपूर : बहुत शांति से उन्होंने कहा—'नहीं, वे दूसरे नहीं, तीसरे पति थे।' फिर मुझे इस पर सोचते देख सहसा पूछा—'लेकिन क्यों, क्या इस बात से हम दोनों में कुछ अंतर पैदा हो गया है ?'..... (रुक कर) और मुझे झूठमूठ कहना पड़ा—'नहीं-नहीं डॉली, कैसी बात करती हो ? मैं तो ऐसे ही कह रहा था।'

मि० आनंद : (रुचिपूर्वक) तब क्या कहा उन्होंने ?

मि० कपूर : तब.....(सोच कर) तब कुछ नहीं। विषादमय नेत्रों से मेरी ओर देखते हुए केवल इतना कहा—'मैं सोचती हूँ, मुझे यह बात तुम्हें न बतानी चाहिए थी।' (रुकता है, जैसे आनंद के कुछ पूछने की प्रतीक्षा कर रहा हो) और न जाने क्यों मैं उस रोज़ इतना कठोर हो गया—मुझे एक धक्का-सा जो पहुँचा था—मैं ने व्यंगपूर्वक पूछा—'तुम्हारे पहले पति थे मिस्टर कैलाश नारायण मेहरोत्रा, श्री लक्ष्मी पेपर मिल्स के मैनेजिंग डायरेक्टर, जिनकी प्रॉपर्टी उनकी मृत्यु के बाद तुम महिला-श्रम को दान कर आयी हो.....तुम्हारे तीसरे पति थे डॉक्टर भवानीशंकर, जिनका हार्ट फ़ेल हो गया था.....और तुम्हारा चौथा पति हूँ मैं—

यानी बैरिस्टर चंद्रप्रकाश कपूर, जो अभी ज़िंदा है। लेकिन तुम्हारे दूसरे पति कौन हैं? वह ज़िंदा हैं या मर गये हैं? उनका नाम मैं जानना चाहता हूँ।'

मि० आनंद : (सविस्मय) ओफ़्.....तुम्हें इतना आगे न बढ़ना चाहिये था.....हाँ, तो क्या नाम बतलाया उन्होंने?

मि० कपूर : उस रोज़ वास्तव ही में उन्होंने मेरी आँखों से आँखें मिलायीं और मैं उन नेत्रों की विष-सी गंभीरता में केवल एक मलिन तथा धुँधली-सी व्यथा देख सका। दृढ़ स्वर में उन्होंने कहा—'मैं समझती हूँ डियर, तुम्हें मेरे अतीत के प्रति ईर्ष्यालु होने का कोई अधिकार नहीं है।'

मि० आनंद : (मनोयोगपूर्वक सुनते हुए) कहते जाओ, कहते जाओ, रुको मत। तुम ने इस पर क्या कहा?

मि० कपूर : मेरी कठोरता अपनी सीमा पर पहुँच रही थी। मैं ने रूखे स्वर में कहा—'यह ईर्ष्या नहीं है। यह जिज्ञासा है। मैं जानना चाहता हूँ, तुम्हारे दूसरे पति कौन थे? क्या तुम ने उन्हें तलाक़ दे दिया है?' और तब उन्होंने तड़प कर कहा—'नहीं, उनका भी देहांत हो चुका है।'

मि० आनंद : उनका भी देहांत हो चुका है!.....यानी तीनों पति मर गये थे, तब इन्होंने आप से विवाह किया?'

मि० कपूर : हाँ तीनों भाग्यवान मर चुके हैं, ऐसा उन्होंने मुझे

बताया। (मुँह तिरछा कर, एक अधूरी हँसी हँसते हुए) और चौथा भाग्यशाली मैं हूँ, देखिये, मेरा क्या अंजाम होता है ?

मि० आनंद : (कामरेडी हँसी हँस कर जैसे जता रहा हो कि हम भी साथ हैं) अंजाम क्या होगा ?.....अच्छा होगा। अरे भाई उन तीनों की बक़ाया उम्र भी तो तुम्हें ही मिली है, सो चिंता किस बात की ? और फिर हमारी शुभकामनायें भी तो.....

मि० कपूर : (गहरी) हूँ.....

मि० आनंद : तो इस प्रकार यह बात ख़तम हुई.....

मि० कपूर : (ठोकर-सी खा कर) ख़तम कहाँ हुई ? थोड़ी देर बाद उन्होंने मुझसे कहा—'मेरे विचार से डियर, तुम्हें और अधिक विवेकवान होना चाहिए। क्या तुम्हारा मुझे इस प्रकार से क्रॉस एक्ज़ामिन करना अनुचित नहीं है ? मेरे अपने दुर्भाग्य का एक अलग हिस्सा है। उस बीते हुए हिस्से पर मैं अवश्य ही परदा डालना चाहूँगा। आख़िर उन दुःखद बातों को सोच कर कहाँ तक परेशान हुआ जाय ?'

मि० आनंद : (अपना सिर नीचे ला, फिर ऊपर ले जाते हुए) ठीक कहा उन्होंने।

मि० कपूर : (कुछ चिढ़ कर) ठीक तो कहा उन्होंने, लेकिन आख़िर मैं उनका पति हूँ, क्या मुझे उनकी बातें जानने का कुछ भी अधिकार नहीं है ? इसी से मैं ने उनसे कहा—'डॉली, हम लोगों ने एक

दूसरे की जिंदगी को शेयर करने के लिए ही आपस में विवाह किया है। विवाह एक आपसी कान्ट्रेक्ट है जिसमें सारी बातें और सचाईयाँ शुरू में ही प्रकट हो जानी चाहियें।' इस पर उन्होंने कहा—'डियर तुम तो बैरिस्टर की तरह बातें कर रहे हो! यदि मैं शुरू में ही यह बातें तुम से कह देतीं तो तुम और भी ज़्यादा परेशान हो जाते। मैं ने तो सिर्फ़ इसीलिए तुम्हें कुछ न बताया था, क्योंकि मैं जानती थी तुम ज़रूर ग़मगीन हो जाओगे।'

मि० आनंद : (कुछ कहने का प्रयास करते हैं, किंतु सहसा जड़ हो जाते हैं)

मि० कपूर : कितनी बेतुकी बात थी—उस वक़्त तो मेरे दुःखी हो जाने जाने का ख़्याल था, लेकिन बाद में बतलाते समय यह न सूझा कि यह सब सुन कर अब मैं परेशान होऊँगा या नहीं? (तनिक ठहर कर) मैं तब कुछ न बोला। बिल चुका कर हम चुपचाप चले आये। रास्ते में भी कुछ बातचीत नहीं हुई और न ही यहाँ आने पर।

मि० आनंद : और तब से फिर बातचीत हुई ही नहीं?

मि० कपूर : हाँ, विशेष बातचीत नहीं हुई, सिवाय मामूली बातों के। इस घटना से दो-तीन दिन पहिले उन्होंने (इशारा कर) मेरा बस्ट बनाना शुरू कर दिया था। इस के बाद भी बनाती रहीं, बिल्कुल पहले की तरह.....

मि० आनंद : और आजकल भी बनाती हैं ?

मि० कपूर : हाँ-हाँ, कोर्ट से लौट आराम-वाराम कर ठीक चार बजे मैं (संकेत कर) इस कुर्सी पर आ कर बैठ जाता हूँ और अपनी दृष्टि (इशारा कर) उस भागते हुए हिरन पर जमाये रहता हूँ। पाँच, सवा-पाँच तक वे मेरे इसी पोज़ में मूर्त्ति बनाती रहती हैं। उस समय भी थोड़ी-बहुत बातचीत हो जाती है, जैसे—'डियर, तुम्हारा सिर झुकता जा रहा है' .....या 'क्या थक गये हो ?'.....या 'ज़रा सिर ऊपर.....बस ठीक है'.....

मि० आनंद : (संतोष का भाव) अरे, इतनी तो बात है, इस पर तुम रोते-धोते हो। अब क्या चाहते हो तुम ?

मि० कपूर : हाँ, काम तो कुछ भी नहीं रुक रहा है, सब चल रहा है ! लेकिन आनंद जो कुछ भी हो, मैं अपने दिमाग से तीन पतियों वाली बात किसी भी तरह से नहीं निकाल पा रहा हूँ। तुम हँसोगे। बहुधा मैं दिमाग़ में उन की कल्पित तस्वीरें बनाता हूँ .....उन की सूरत-शक्ल की बाबत सोचता हूँ .....उन की चाल-ढाल उनकी आदतों और तरीक़ों के विषय में सोचता हूँ। पहले पति मिस्टर कैलाश मेहरोत्रा थे—मैं जानता हूँ। तीसरे पति डॉक्टर भवानीशंकर का भी नाम मैं कभी-कभी सुनता था। लेकिन यह दूसरे पति कौन सज्जन थे ?.....क्या इनका नाम था ? क्या यह करते थे ? क्या इन्हें हुआ था ?.....सच पूछो तो इन

दूसरे पति महोदय ने ही मुझे सब से ज़्यादा परेशान कर रखा है। मैं किसी भी लहमे इन्हें नहीं भूल पाता।

मि० आनंद : (सिर हिलाते हुए) इट इज़ बट नैचुरल (यह स्वाभाविक ही है)। तुम्हें चाहिये कि इस परेशानी से बचने के लिए तुम स्वयं ही उन से उन के उस दूसरे पति महोदय का नाम पूछ लो। (स्पष्ट करते हुए) यानी बातों-बातों में, एक दम डायरेक्टली नहीं। समझ गये न? (मिस्टर कपूर के सिर हिला देने पर) तभी यह समस्या हल हो सकेगी।

मि० कपूर : अच्छा, कोशिश करूँगा। भाई, मुझे तो बहुत डर लगता है। मैं इस बक़ाया संबंध को भी नहीं तोड़ना चाहता।

मि० आनंद : (अस्सी प्रतिशत ग़लत हँसी हँस कर) नहीं-नहीं, ऐसी कोई बात नहीं, (घड़ी देखता हुआ) अब इज़ाज़त दो भाई। बहुत वक़्त हो गया।

मि० कपूर : अरे बैठो-बैठो, चाय तो आने दो, आ रही है। (आवाज़ देता है) राधेश्याम.....राधेश्याम.....

दूसरा दृश्य

[वही ड्राइंग रूम। कोई भी वस्तु घटायी या बढ़ायी नहीं गयी है। केवल समय, और कमरे में उपस्थित सज्जनों में अंतर है।

मिस्टर कपूर चेहरे पर अधूरी मुस्कान लिये कुर्सी पर बैठे हुए, भागते हिरन की मूर्त्ति की ओर इस दृष्टि से देख रहे हैं, जैसे वह मैस्मेरेज़म की अँगूठी हो।

बस्ट वाले स्टैंड के निकट एक युवती—युवती ही कहना उचित होगा—खड़ी हुई छोटी हथौड़ी और छेनी की सहायता से बस्ट बना रही है। वय उसकी पच्चीस के लगभग; अब भी काफ़ी सुंदर; क़द अधिक ऊँचा नहीं; सुरुचिपूर्ण वेश-विन्यास; काफ़ी क़ीमती वस्त्र पहने हुए; आभूषण नहीं के बराबर—केवल कानों में सफ़ेद हीरों के कर्णफूल जो देखने वालों का ध्यान एकदम अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं और बहुत भले मालूम होते हैं; गोरा, पाउडर-रहित चेहरा, जिस से संजीदगी और कातरता टपकती है। कभी कुछ क्षणों के लिए मिस्टर कपूर की ओर देखती है, फिर अपने काम में लग जाती है।

कमरे में एक अन्यमनस्क नीरवता।]

युवती : (सहसा) *थक गये डियर ?*

मि० कपूर : (चौंक कर) *नहीं डॉली* (सफ़ाई-सी पेश करते हुए) *मेरा सिर दर्द कर रहा है न ?*

युवती : (काम जारी रखते हुए) *सिर दर्द कर रहा है ? ओह ! तुम ने पहले क्यों नहीं कहा ? अच्छा, सिर्फ़ पाँच मिनट और। बस।*

मि० कपूर : *नहीं-नहीं, तुम बनाती रहो। इतने आराम से तो मैं आध घंटा और बैठ सकता हूँ।*

युवती : (छोटी मुस्कान) *हूँ.....*(कपूर की ओर देख) *कुछ सोचने लग गये ?*

मि० कपूर : (हँस कर) *हाँ.....सुपथगा—तुम्हारे नाम के संबंध में। इस प्रांत में ऐसे नाम नहीं रखे जाते।* (तनिक ठहर कुछ काँपते स्वर में) *डॉली, तुम्हारा जन्म कहाँ हुआ था ?*

सुपथगा : (सविस्मय) कहाँ ?.....शायद अस्पताल में ।..... मुझे ठीक-ठीक याद नहीं है ।

मि० कपूर : मेरा मतलब है—देश के किस हिस्से में ? किस शहर में ?.....

सुपथगा : (अत्यंत सादगी से) मुझे ज़रा भी ख़्याल नहीं है डियर । तुम तो जानते ही हो, मैं अनाथ हूँ ।

मि० कपूर : (सीधे बैठते हुए) लेकिन तुम अपने माता-पिता को तो जानती होगी ?

सुपथगा : (पूर्ववत्) हाँ, केवल नाम भर ।

मि० कपूर : (साहस कर) तो तुम्हारा पालन-पोषण कहाँ हुआ ?

सुपथगा : (आहत स्वर में) तुम मुझे फिर दुःखी करना चाहते हो ?.....ओह डियर ! मेरा बचपन बहुत करुण और पीड़ापूर्ण रहा है । अच्छा हो, यदि हम उस की याद न करें ।

मि० कपूर : सुपथगा ! (समवेदना के स्वर में) मुझे बहुत खेद है, (उठ कर उसके निकट आते हैं, उसके सिर पर हाथ फेरते हुए) सचमुच ही । देखता हूँ, तुम्हें बहुत दुःख हुआ है । अच्छा, उठो । हाथ धो लो । कपड़े भी बदल लेना । फ़्लावर गार्डेन चलेंगे—इससे तबियत तो कुछ ठीक हो ही जायेगी । अब देर न करो ।

[सुपथगा उठ कर अंदर जाती है । मिस्टर कपूर उसके दुबले-पतले शरीर को जाते हुए देखते हैं और मेज के निकट एक सोफे पर जा बैठते हैं । एक पुस्तक उठा पृष्ठ पलट कर पढ़ने का प्रयास करते हैं ।]

मि० कपूर : (पढ़ते हैं)
"एंड रेस्ट एट लास्ट व्हेर सोल्स अनबॉडीड डवेल,
इन एवर फ्लावरिंग मीड्स ऑव एस्फ़ोडेल"*

एस्फ़ोडेल.....(दुहराते हैं, विस्मयपूर्वक) एस्फ़ोडेल .....वह पीला फूल जो उन खेतों में होता है जहाँ मृतक आत्माएँ निवास करती हैं....., लेकिन इन लाइनों और इस शब्द के नीचे लाल पेंसिल से निशान किस ने लगाया ! और क्यों ? .....इस 'एस्फ़ोडेल' शब्द के नीचे विशेष रूप से ? .....इस सब का मतलब क्या है ?.....(आवाज दे कर) क्यों डॉलीऽऽऽ, होमर पर निशान तुम ने लगाये हैं ?

सुपथगा : (अंदर से) मैं ने ?—नहीं तो। मैं ने तो अभी यह पुस्तक पढ़ी भी नहीं।

मि० कपूर : (परेशान स्वर में, आप ही आप) तब किस ने ?..... यह किताब किस की है ?.....मिस्टर मेहरोत्रा की नहीं हो सकती—वे बिज़नेस-मैन थे, उन्हें लिट्रेचर से क्या मतलब ?.....डाक्टर भवानी-शंकर से भी यह किताब पढ़ने की उम्मीद नहीं की जा सकती। तब ? तब.....(सहसा) कहीं यह उन बीच वाले महाशय की तो नहीं है

---

*'And rest at last where souls unbodied dwell,
In ever-flow'ring meads of asphodel.'

जिनको मैं नहीं जानता ? यह निशान शायद उन्होंने ही लगाये हैं । लेकिन उन्होंने 'एस्फ़ोडेल' पर निशान क्यों लगाया ? क्या उन्हें पहले से ही मालूम हो गया था.....

[सुपथगा का प्रवेश । उसने नयी साडी बाँध ली है । केश सँवार रखे हैं और हाथ में बैग ले रखा है ।]

सुपथगा : (मिस्टर कपूर को देख) *अरे, आप किस सोच में हैं ?*

मि० कपूर : (हड़बड़ा कर, पुस्तक बंद करते हुए) *नहीं-नहीं । कुछ नहीं ।* (सुपथगा को ऊपर से नीचे तक देखते हुए) *तुम तैयार हो गयीं ?.....ठीक है, चलो ।*

[सहसा टेलीफोन की घंटी बजती है । मिस्टर कपूर जल्दी से रिसीवर उठाते हैं ।]

मि० कपूर : *हैलो—यस, कपूर स्पीकिंग.....ओह ! वेरी सॉरी* (माउथ-पीस पर हाथ रख, सुपथगा से) *तुम्हारी सहेली मिसेज़ आगा लाईन पर हैं ।*

[सुपथगा आगे बढ़ मिस्टर कपूर से रिसीवर लेती है और बहुत धीरे-धीरे बात करने लगती है । कपूर आगे सरक आते हैं ।]

सुपथगा : (सहसा माउथ-पीस पर हाथ रख, कपूर की ओर मुड़) *डियर, एक्सक्यूज़ मी, ज़रा मेरे बैग में से मेरी नोटबुक दे देना ।*

[मिस्टर कपूर सोफे पर पड़े बैग में से नोटबुक निकाल कर सुपथगा को पकडा देते हैं । एक लिफाफा

नीचे गिर पडता है। मिस्टर कपूर उसे उठाते हैं और उसके अंदर के पत्र को पढ़ने लगते हैं। उनके चेहरे पर अनेक भाव आने-जाने लगते हैं—चेहरे का रंग बिल्कुल बदल जाता है।

रिसीवर रख सुपथगा उस ओर मुड़ती है और कपूर के हाथ में लिफाफा देख फुर्ती से कपूर से उसे ले लेती है। उसका चेहरा फक पड़ जाता है और शरीर में कुछ कंपन भी प्रतीत होता है। कपूर चुपचाप उसे देखते रहते हैं।]

मि० कपूर : (टूटते स्वर में) *कीर्तिपुर के समाधि-क्षेत्र का यह बिल क्यों ?.....*

सुपथगा : (अपने को सम्हाल, तनिक तुनक कर) *लेकिन किसी की प्राईवेट चीज़ उसकी इज़ाज़त बिना इस तरह देखना ?.....*

मि० कपूर : (तैश में) *गोली मारो इज़ाज़त को। मैं यह जानना चाहता हूँ कि कीर्त्तिपुर के समाधि-एरिया से तुम्हारा क्या संबंध है ? वहाँ किसकी समाधि का और किस बात का बिल है यह ?*

सुपथगा : (दुःखी हो कर) *लेकिन डियर, तुम मेरे अतीत की इन घटनाओं को जानने के लिए क्यों आतुर हो ?*

मि० कपूर : (चिढ़ कर) *सुपथगा। बेकार की बात मत करो। मेरा दिमाग पहले ही परेशान है !*

सुपथगा : *मैं भी कई दिन से मार्क कर रही थी—तुम्हारे दिमाग पर शक और वहम का भूत बुरी तरह चढ़ा हुआ है। डियर, तुम्हें किसी डाक्टर से*

सलाह लेने की सख़्त ज़रूरत है—मानसिक रोगों के किसी डाक्टर से।

मि० कपूर : *(व्यंगपूर्वक) बात बहुत सुन्दर तरीक़े से उड़ा दी। लेकिन आज मैं ख़ामोश न रहूँगा। तुम्हें बताना होगा कि यह बिल.....*

सुपथगा : *(अदम्य साहसपूर्वक) तो मैं न बताऊँगी। मैं तुम्हारी इन दूषित शंकाओं की विचार-धारा को प्रोत्साहन न दूँगी।*

मि० कपूर : *(सक्रोध) तो मुझे कीर्त्तिपुर जाना होगा। मैं सब कुछ मालूम करके ही रहूँगा।*

[मिस्टर कपूर का सवेग प्रस्थान। सुपथगा का उन्हें जाते हुए देखते रहना, और आँसुओं की बाढ़ रोकने की चेष्टा में असफल हो, अपने को सोफे पर मर्माहत डाल लेना।

उच्छ्वास की तरंगों के साथ सिसक कर रोने की अस्पष्ट ध्वनि।]

तीसरा दृश्य

[कीर्तिपुर समाधि-क्षेत्र का एक भाग। संध्या का अँधकार थोड़ा घना हो चुका है। साफ-साफ कुछ भी नहीं दिखायी देता। एक ओर कुछ समाधियाँ धुँधली-सी दिखायी पड़ती हैं। जंगली घास-पौधों से सब हिस्सा ढका हुआ है।

सहसा घास में कुछ आदमियों के चलने की आहट। टार्च का तेज प्रकाश उस भाग पर पड़ने लगता है।

समाधि-क्षेत्र के चौकीदार और मिस्टर कपूर का प्रवेश।]

चौकीदार : (लाठी से इशारा कर) *एही है सरकार उन की समाधी.....ए sss वाली.....*(तनिक रुक कर) *अब हमें इनाम मिले सरकार।*

मि० कपूर : (चौंक कर) *हाँ-हाँ।* (जेब से एक नोट निकाल कर चौकीदार को देते हैं)

चौकीदार : *अब हम जाही सरकार।* [सलाम कर प्रस्थान]

मि० कपूर : (स्वयं) *तो यही है उन दूसरे महोदय की समाधि।*

[आगे बढ़ टार्च की रोशनी फेंकते हैं। सविस्मय देखते हैं—एक समाधि बनी हुई है, बहुत पुरानी नहीं, और उस पर वे ही मनहूस फूल 'एस्फ़ोडेल' खिल रहे हैं। पसीना पोंछ कर देखते हैं कि उस के नज़दीक ही एक दुबले-पतले क्षयी कवि जैसे नवयुवक का एक सुन्दर बस्ट बना हुआ है, जो सुपथगा के हाथ का ही बना हुआ प्रतीत होता है।

एक अनिश्चित आशंका से वे भयभीत पुरुष की भाँति काँप उठते हैं। उस बस्ट को देख न जाने क्या सोच कर पसीना-पसीना हो जाते हैं।

टार्च बुझा वे नीचे घास पर बैठ जाते हैं और कुछ भी निश्चित न पर पाने के कारण तथा शायद अपने को मजबूत बनाने के लिए सिग्रेट निकाल, माचिस जला, उसे सुलगाने की कोशिस करते हैं!

अँधेरा घना हो गया है, हवा ख़ामोश है और तारे सहमे हुए हैं!]

[परदा गिरता है]

प्रतिशोध

इलाहाबाद
दिसंबर—४६

मनोरमा
को

[नव-वधु की भाँति सजा हुआ एक ड्राइंग रूम। सुरुचि से सजा हुआ। फ़र्नीचर उम्दा और क़रीने से लगा हुआ। दीवारों पर कैलेंडर, फ्रेम में मढ़े चित्र और एक क्लाक। दरवाजों पर नीले परदे। खिड़की पर फूलोंदार हल्के परदे। ड्राअरदार छोटी मेज पर टेलिफ़ोन, टेलिफ़ोन डायरेक्टरी, रेलवे टाइम-टेबल और कुछ लिखने-पढ़ने का सामान। उसी मेज पर एक सुन्दरी युवती और एक स्वस्थ युवक का चित्र—एक ही फ्रेम में। कमरे में हल्का हरा प्रकाश। घड़ी में सात बज कर दस मिनट हुए हैं।

सोफे पर चित्र वाली युवती बैठी हुई कुछ बुन रही है। ऊन का गोला नीचे दरी पर पड़ा हुआ है। युवती बहुत सुन्दर, शांत और व्यथित-सी प्रतीत हो रही है। चेहरे पर विषादमयी कातरता। आँखें उन कुमारियों के समान, जो अपने प्रेमी को आत्म-समर्पण करने पर भी भयभीत रहती हैं। माथे पर सुहाग-बिंदी। साड़ी बहुत कीमती। पैरों में काली जूतियाँ। ज़ेवर हल्के—आधुनिक फैशन के अनुसार।

सहसा चित्र वाले युवक का प्रवेश। उसने सर्ज का सूट पहन रखा

है। टाई नहीं है। युवक बहुत सुन्दर नहीं है, भद्दा भी नहीं है। नेत्रों से असाधारण चातुर्य्य—या धूर्त्तता—टपकती है। ऐसा लगता है, जैसे यह युवक सब कुछ कर सकता है।

दरवाजे का परदा उठाये वह खड़ा हो जाता है और मुस्कराती दृष्टि से युवती को बुनते हुए चुपचाप देखता रहता है—लगभग एक मिनट।

कुछ आभास पा, युवती सहसा चौंककर सिर उठाती है और युवक को देख बुनाई का सामान पल्लों के अन्दर छिपाने का प्रयास करती है।]

युवक : (आगे बढ़ता हुआ) *हूँ-हूँ, यह क्या ? यह छिपाया क्या जा रहा है ?*

युवती : (झेंपती हुई) *कुछ नहीं.....*

युवक : (उसके निकट बैठता हुआ) *कुछ तो ज़रूर है..... बतला दो न !*

युवती : (ख़ामोश है, जैसे ख़ामोश रह बात टाल देगी)

युवक : (उसका हाथ अपने हाथ में लेता हुआ) *बतला दो न शकुन। क्या बुन रही थी तुम ?*

शकुन्तला : (शर्माती हुई, नीची दृष्टि से) *तुम्हें क्या लेना है इस से ?*

युवक : (यकायक, हँसता हुआ) *बस-बस.....मैं समझ गया। कहो तो अब मैं बतला दूँ.....*

शकुन्तला : (आशा-निराशा की पेंगों में झूलती-सी) *क्या ?..... बतलाओ तो ज़रा।*

युवक : (शरारती हँसी हँस कर) *तुम.....तुम स्वेटर बुन रही थीं—होने वाले बेबी के लिए.....कहो, है न यही बात ?*

शकुन्तला : (सलज मुस्कान, हाथों से अपना मुँह छिपा लेती है)

युवक : वाह, तुम तो ऐसे शरमा रही हो जैसे कोई अनहोनी बात होने जा रही है.....(रुक कर) अब तो स्वेटर दिखा दो। हम भी देखें उसकी बुनाइ ! .....(कुछ क्षण ठहर) ओफ़्फ़ोह ! भई इतना शरमा क्यों रही हो ?

शकुन्तला : (मानपूर्वक) कौन शरमा रहा है ?

युवक : अच्छा, नहीं शरमा रही हो तो दिखाओ स्वेटर— या जो कुछ भी तुम बुन रहीं थीं !

[शकुन्तला झेंपती हुई मुस्कान से अधबुना स्वेटर उसे पकड़ा देती है। सामने रखे स्टूल पर पड़े हुए ताश के पैकेट में से ताश निकाल, स्टूल पर कार्ड हाउस खड़ा करने लगती है।]

युवक : (स्वेटर देखता हुआ) बहुत सुन्दर बुना है। (रुक कर) हमारे ऐसे भाग्य कहाँ थे जो हम ऐसा बढ़िया स्वेटर पहनते ? लेकिन ख़ैर, संतोष यह है कि हम न सही हमारा मुन्ना ही पहन लेगा इसे.....मुन्ना या मुन्नी ? क्यों शकुन ?.....

[शकुन्तला शर्माती मुस्कराहट से चुपचाप कार्ड हाउस तैयार कर रही है।]

युवक : (शरारत से) अच्छा, अब आप कार्ड हाउस खड़ा करने लगी हैं !.....सभी तरफ़ नव-निर्माण। अभी तक स्वेटर, अब कार्ड हाउस !

शकुन्तला : (परेशानी-सी जतलाते हुए) आप आज आख़िर.....

युवक : (बात काट कर) अच्छा-अच्छा, यह बात यहीं पर ख़तम। कोई दूसरी बात करें.....हाँ शकुन

देखो, मैं ने सोचा है कि बेबी के होने पर उस के लिए उसी दिन एक इश्योरेंस पॉलिसी ले ली जाय। बीस हज़ार की काफ़ी होगी! आज मैं सनलाइफ़ के एजेंट से इसी की बाबत बात भी कर रहा था। क्यों ठीक है न? तुम क्या कहती हो?

शकुन्तला : (निर्विकार स्वर में) मैं क्या..... रुक कर) हाँ, ठीक है।

युवक : (एक विचित्र प्रसन्नता से) साथ ही एक गवर्नेस की तलाश में भी हूँ। ऐन मौक़े पर तो खट् से मिल नहीं जाती कोई। पहले से ही किसी होशियार गवर्नेस को निगाह में रखना ठीक होता है।

[शकुन्तला मुस्कराते हुए, बिना कुछ बोले कार्ड हाउस खड़ा कर रही है।]

युवक : (सहसा चौंक कर) और हाँ, ख़ास बात तो बताना ही भूल गया।

शकुन्तला : कुछ उत्सुकता से) क्या?

युवक : अभी एक धाय का भी इंतज़ाम करना बाक़ी है।

शकुन्तला : (कुछ चौंक कर) धाय?.....क्यों?.....

युवक : बेबी को फ़ीड करने के लिए। तुम से फ़ीड न करवाऊँगा। (शकुन्तला की ओर देखता है) बेबी की वह अनाधिकार चेष्टा शायद मैं सहन न कर सकूँगा इसलिए।

[शकुन्तला शर्मायी-सी हँसी हँसते हुए कार्ड हाउस बनाने में व्यस्त है।]

युवक : (कार्ड हाउस देख कर) अरे, तुम तो काडे हाउस बनाने में बहुत एक्सपर्ट हो। मालूम पड़ता है तुम ने बचपन में बहुत कार्ड हाउस बनाये हैं। हैं न ?

शकुन्तला : (खोये स्वर में) कार्ड हाउस ही तो बनाये हैं मैं ने अब तक !

युवक : (अनमुनी-सी कर) क्या ?.....क्या कहा तुम ने ?

शकुन्तला : (उसी प्रकार) कुछ नहीं।

युवक : (ऊबता-सा) तुम अभी भी बच्ची ही हो शकुन ! इतनी देर से ये कार्ड हाउस खड़ा कर रही हो। बच्चों के इस खिलौने में तुम्हें क्या बहुत आनंद आ रहा है ?

शकुन्तला : (कवियों के से निराश स्वर में) हम भी तो नियति के खिलौने हैं। वह हमें बनाती है, हम से खेल खेलती है—उसे भी अपने खेल में बहुत आनंद आता है।

युवक : (त्रस्त स्वर में) शकुन ! तुम फिर ऐसी बेकार बातें करने लगीं। (कार्ड हाउस की ओर हाथ बढ़ा) मैं इसे गिरा दूँगा।

शकुन्तला : (व्यथित हो कर) न-न, ऐसा न करो अजित। (उसका हाथ रोक देती है)

अजित : (आश्चर्यपूर्वक) क्यों ?

शकुन्तला : (व्यथित स्वर में) अरमानों के न जाने कितने काडे हाउस बना-बना कर गिराये हैं, (एक क्षण रुक कर) या गिराने पड़े हैं। अब इसे तो रहने दो अजित।

क्यों सोया तूफ़ान जगाते हो ?

अजित : (घबरा कर) शकुन.....शकुन.....क्या पागलों जैसी बातें कर रही हो ?.....

शकुन्तला : (बीच में ही) उफ़ ! कितना अच्छा होता अगर मैं पागल ही होती। पिछली बातें.....भूली हुई यादें मुझे परेशान तो न करती रहतीं। (मानों असह्य पीड़ा हो रही हो) ओह अजित !..... पुराने ख़्याल.....वोह सब मन को बुरी तरह कचोटने लग जाते हैं और फिर किसी भी तरह शांति नहीं मिलती।

अजित : (तने हुए स्वर में) तो तुम पिछली बातें अभी तक नहीं भुला पायी हो ?

शकुन्तला : (गहरी साँस लेकर) काश, यह मेरे हाथ की बात होती !

अजित : (समवेदनापूर्वक) मैं समझता हूँ शकुन, तुम अगर अपने दिल को कुछ मज़बूत करो तो मौक़े-बे-मौक़े यह फ़िट तुम्हें न आया करें। जो कुछ हो चुका है, उसे सोच-सोच कर यह हालत कर ली है तुम ने अपनी। मैं कहता हूँ, तुम बीती बातें सोचती ही क्यों हो ? (तनिक ठहर कर) ज़रा सोचो, इस से बेबी पर क्या असर होगा ? (उसका हाथ सहलाने लगता है)

[**घर के नौकर का प्रवेश। पहले झिझकता-सा है, फिर साहस कर आगे बढ़ता है।**]

अजित : क्या बात है बंसी ?

बंसी : *सरकार बाहर एक योगी-महात्मा जैसे खड़े हैं। आप से मिलना चाहते हैं।*

अजित : *योगी ?.....मुझ से मिलना चाहते हैं ?* (सोचने का प्रयास करते हुए) *उन्हें ले आओ।*

[बंसी का सिर झुका कर प्रस्थान। शकुन्तला उठने लगती है।]

अजित : (शकुन्तला का हाथ थाम) *तुम भी यहीं रहो। कुछ तो तबियत बहलेगी तुम्हारी। अंदर जा कर तो फिर सोचने लगोगी।*

[शकुन्तला कुछ थकी हुई-सी फिर बैठ जाती है।

एक युवा योगी का प्रवेश। आकृति सुन्दर और सौम्य। शरीर दृढ़ और गठा हुआ। बाल घुँघराले—अपनी वर्त्तमान अवस्था में संतुष्ट। आँखें, और उनकी दृष्टि अद्‌भुत—ऐसा लगता है, जैसे यहाँ खिलवाड़ नहीं चल सकता। घनी दाढ़ी से दोनों गाल ढके हुए हैं। दाहिने हाथ में एक हल्का कड़ा। एक हल्का गेरुआ कुर्त्ता और वैसी ही धोती पहने हुए। पैर में साधारण-सी चप्पलें। दरवाजे के पास ही ठिठक कर खड़ा हो जाता है।

अजित और शकुन्तला दोनों चौंक कर पीछे खड़े हो जाते हैं, मानों उन पर शैतान की परछाईं पड़ गयी हो। योगी की ओर देख, दोनों एक दूसरे की ओर प्रश्नसूचक विस्मय-दृष्टि से देखते हैं। जैसे योगी को पहिचानने की चेष्टा-सी कर रहे हों।

सहसा योगी कमरे के अशोभन मौन को भंग करता है।]

योगी : (आगे बढ़, हाथ जोड़ कर) *नमस्ते।*

अजित : (अवाक दृष्टि से ताकते हुए) *नमस्ते* (कुर्सी की ओर संकेत कर) *बैठिये।* (संशयपूर्वक) *मैंने आप को*

कहीं देखा है।

योगी : *मुझे ?.....यानी मेरी आकृति को.....संभव है, कहीं देख लिया हो। यह संसार तो बहुत विस्तृत है।*

अजित : (संतोष की आधी साँस लेता हुआ) *जी, बहुत विस्तृत है।*

योगी : (शकुन्तला से) *देवी, आप कष्ट क्यों पा रही हैं ? बैठ जाईये।*

[**शकुन्तला बावली-सी अजित के निकट बैठ जाती है। उसकी मुख-मुद्रा से प्रकट हो रहा है कि वह कुछ भी नहीं समझ पा रही है। उसकी दृष्टि बराबर योगी की ओर ही है। साँस तेज़ चलने लग जाती है।**]

अजित : *कहिये, कैसे पधारने की कृपा की ? मेरे योग्य कोई सेवा ?*

योगी : (हँसता है, मानों अजित का उपहास कर रहा हो) *कुछ नहीं, ऐसे ही। दुनिया की हलचल से दूर, एकांत में पड़े-पड़े कुछ ऊब-सा उठा था। सोचा, सुखी परिवारों की एक झलक ही देख लूँ। भूला-भटका यहाँ आ पहुँचा—शायद पूर्व जन्म के किसी संस्कार के कारण।* (मुस्कराता है)

अजित : (समझने की चेष्टा करता हुआ) *जी.....*(ध्यानपूर्वक योगी की ओर देखता है)

योगी : (शकुन्तला की ओर देख) *यह आप की धर्मपत्नी हैं ?*

[शकुन्तला अपने में ही सिमट जाती है, जैसे योगी के शब्द उसे छूने आ रहे हों।]

अजित : (असंतुष्ट स्वर में) *जी हाँ.....*(कुछ बोलने की चेष्टा करता है)

योगी : (कमरे में चारों ओर दृष्टि दौड़ा कर) *कमरा बहुत सुन्दर है, देख कर प्रसन्नता हुई।* (सहसा कार्ड हाउस पर दृष्टि जाती है) *अच्छा, यह कार्ड हाउस यहाँ पर भी !* (किंचित रोष से) *किंतु क्यों ? यहाँ इसे खड़ा करने की किसी को क्या आवश्यकता पड़ गयी ?* (उँगली से टेस देता है। कार्ड हाउस भहरा कर गिर जाता है)

शकुन्तला : (धीरे-धीरे नीची दृष्टि ऊपर करती है ; कार्ड हाउस को गिरा देख, चौंक कर) *मेरा कार्ड हाउस गिर गया ! ओह !.....लेकिन कैसे ?.....*

योगी : (कठोर मुस्कान से) *तो यह कार्ड हाउस आप ने तैयार किया था ! मेरा अनुमान सही था। स्त्रियाँ ही ऐसे खेलों से अपने को बहलाती हैं।* (शकुन्तला की ओर देख) *आप का कार्ड हाउस मैंने गिराया है।* (यकायक कठोर स्वर में) *आप लोग क्या जीवन भर इसी तरह कार्ड हाउस खड़े करती.....*

शकुन्तला : (बात पूरी होने से पहले ही, एकदम खड़ी हो कर) *ओह अजित !* (अजित उसे सम्हालता है) *मुझे इन से डर लग रहा है। इन्होंने मेरा कार्ड हाउस गिरा दिया। इन का चेहरा देखो—कितना*

भयानक है ! मैं इन से बात नहीं करूँगी अजित, मैं इन्हें देखूँगी भी नहीं। मैं अंदर चली जाऊँगी !
(हाथों में मुँह छिपा जाने को उद्यत होती है)

योगी : (भारी स्वर में) *जाईये, अंदर जाईये। मुझ से आप को डर लग रहा है। लेकिन देखिये, अंदर जा कर मेरी इन भयानक आँखों का ख़्याल मत कीजियेगा, नहीं तो आप को और ज़्यादा डर लगेगा.....*

अजित : (सवेग) *ईश्वर के लिए चुप हो जाओ।*

[शकुन्तला का तेजी से अंदर प्रस्थान। उसके पीछे-पीछे अजित का भी प्रस्थान। योगी मुस्कराता हुआ खड़ा हो जाता है। छोटी मेज के निकट जाता है और शकुन्तला व अजित के चित्र को एक व्यंग मुस्कान के साथ देखने लगता है।

अजित का प्रवेश। युवक के निकट आता है। योगी आहट पा कर चित्र मेज पर रख देता है और अजित की ओर मुड़ता है।]

अजित : (योगी की आँखों में आँखें गड़ाते हुए) *एक दुर्बल स्त्री के कोमल हृदय पर इतनी कठोरतापूर्वक आघात करना, क्या घृणित कायरता नहीं है ? .....और वह भी केवल इस कारण कि वह मेरी पत्नी है ?*

योगी : (मुस्कराता हुआ) *तो तुम ने मुझे पहचान लिया ?*

अजित : *यह मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं है।*

योगी : (गहरे व्यंग्य से) *दुर्बल स्त्री.....अपने हृदय की*

दुर्बलता की उत्तरदायी क्या स्वयं वह नहीं है ? .....अपनी लगायी आग में वह अपने आप झुलस रही है। मैं ने क्या किया ?

अजित : (तीव्रता से) तुम ने क्या नहीं किया ?.....उसे फुसला कर उस का अस्तित्व नष्ट कर दिया। जब वह अनुभव करने लगी थी कि वह पूरी तरह तुम पर आश्रित है, तुम एक रहस्यमय ढंग से लोप हो गये, उस के सामने समस्याओं का एक जाल छोड़ कर, जिन्हें केवल तुम ही सुलझा सकते थे, और कोई नहीं। तुम नहीं जानते, तुम ने उसके दिल को कितना ज़बर्दस्त आघात पहुँचाया.....तुम ने उस का जीवन ज़हर कर दिया, और अब शायद उसे ख़तम करने आये हो !

योगी : (तनिक भी अप्रतिभ न हो कर) ओह ! तुम यह आरोप मुझ पर लगा रहे हो ! तुम !.....जिस ने मेरी ज़िंदगी बरबाद कर दी। (कठोर स्वर में, बिना रुके हुए) मेरी उमंगों के रंगीन महल को ढा कर खंडहर कर दिया.....जिस ने मेरी जीवित हत्या कर दी.....आज इस अवस्था को पहुँचा दिया कि मैं अपना ही अपवाद बन कर जी रहा हूँ।

अजित : (घबरा कर) जतीन, तुम शायद होश अलग रख यह सब कह रहे हो। अपना जीवन बरबाद करने में तुम्हारा अपना ही हाथ सब से बड़ा

रहा है। ज़िंदगी के रास्ते पर चलते हुए, तुम ने अपने क़दम हमेशा ही गलत तरीक़े से उठाये, और इसीलिए तुम अब तक ठोकरें खा रहे हो।

जतीन : (भावुकतापूर्वक) तुम शायद ठीक कह रहे हो। मैं ने अब तक बराबर ऐसे ही काम किये, जिन से दूसरों की बिगड़ी हुई बन गयी। लेकिन मेरी उस उदारता ने मुझे तबाह कर दिया। (सोचता-सा) अगर मैं उस रात भी अपने उमड़ते हृदय को वश में कर लेता तो.....(क्रोध से भर, एकदम आगे बढ़ते हुए) लेकिन अपनी उस भूल को मैं आज सुधारूँगा, आज। (दाँत पीसता हुआ) मैं तुम से प्रतिशोध लेने आया हूँ अजित! (अजित के बिल्कुल सामने तन कर खड़ा हो जाता है)

अजित : (सहम कर) प्रतिशोध?.....

[बाहर जोर से बिजली कड़कती है। तेज प्रकाश की एक झलक कमरे में आ जाती है।]

जतीन : हाँ प्रतिशोध, (तेज़ी से) किंतु यह मत पूछना कैसा प्रतिशोध?.....किस बात का प्रतिशोध?..... तुम सुन न सकोगे; कोई न सुन सकेगा; स्वर्ग के देवता न सुन सकेंगे; पाप सिहर उठेगा; साहस पसीना-पसीना हो जायगा; दया, उपकार, प्रेम, विश्वास, अपने ढोंग प्रकट हो जाने के कारण काँप उठेंगे; यहाँ तक कि शैतान भी न सुन पाने के कारण अपना मुँह एक ओर को फेर लेगा।

[सहसा खामोश हो जाता है, मानों जोर से कहे गये अपने शब्दों की प्रतिध्वनि सुन रहा है। बाहर बारिश शुरू हो जाती है। आँधी और तूफान चलने लगता है। तेज वर्षा की आवाज और बिजली की कड़क, बीच-बीच में सुनायी दे जाती है।

अजित कुछ परेशान-सा धीरे से सोफे पर बैठ जाता है। जतीन एक हिंसक वेग से कमरे में चहलकदमी कर रहा है। बिजली की चमक से दोनों के चेहरे कभी-कभी चमक उठते हैं। सहसा बिजली बहुत जोर से कड़क कर कहीं गिरती है।]

अजित : (काँप कर जैसे अपनी आत्मा से कह रहा हो) *आज की रात कितनी भयानक है!*

जतीन : (सपना-सा देखता हुआ) *हाँ, ठीक उसी रात की तरह भयानक, जिस में तुम ने मेरे पिता की हत्या की थी। तुम चौंक पड़े। लेकिन क्यों?..... मैं तो वहाँ मौजूद था। पिताजी की हत्या कर लेने के बाद तुम्हें तिजोरी से रूपया निकाल भागते हुए मैं ने देखा था.....और तुम ने उन पर गोली क्यों चलायी—यह भी मैं जानता हूँ, सिर्फ़ इसीलिए न कि तुम्हारी बेहद फजूल-ख़र्ची से तंग आ कर उन्होंने उस बार तुम्हारे 'बार', 'कैफ़े' और 'रेस कोर्स' के बिल चुकाने से इनकार कर दिया था। और क्योंकि तुम्हें रूपये की सख़्त ज़रूरत थी, तुम ने अपने पिता के पुराने दोस्त को—जिस ने तुम्हारे पिता की मृत्यु के बाद से तुम्हें अपने लड़के की तरह पाला-पोसा था, और*

जो अपने ही रूपये से तुम्हें तालीम भी दिलवा रहा था—शूट कर दिया। हूँ.....कितनी अच्छी तरह तुम ने उस महान आत्मा के उपकारों का बदला चुकाया!

अजित : (भयभीत मुद्रा) जतीन!

जतीन : (अपने ही ध्यान में) और इस से पहले तुम अपनी धूर्त्तता से, उस भोली लड़की के हृदय को अपनी ओर फेर लेने में सफल हो चुके थे, जिस ने मेरी आँखों में आँखें डाल, सच्चे प्रेम की सौगन्ध खाते हुए, सदैव के लिए मेरी होने की प्रतिज्ञा की थी.....और मैं यह भी देख चुका था। दिल पर पत्थर रख मैं ने यह देखा था। लड़खड़ाते क़दमों से घर पहुँचने पर मैं ने देखा कि मुझे तबाह कर देने में तुम ने कोई कसर नहीं छोड़ी है। पिताजी की लाश एक ओर तड़प रही थी और तुम्हारे रिवॉल्वर से धुआँ निकल रहा था!

अजित : (एकदम खड़ा हो कर, काँपते स्वर में) झूठ, बिल्कुल झूठ.....मैं ने कुछ नहीं किया। मुझे कुछ भी नहीं मालूम.....

जतीन : (व्यंग्यपूर्वक) ओह! तुम ने कुछ नहीं किया! तुम अस्वीकार करते हो, लेकिन तुम्हारे चेहरे से तो झूठ बोलने की विडबना इतनी स्पष्ट हो रही है कि.....

अजित : (बात काट, काँपते स्वर में) तुम अपनी प्रभावपूर्ण बातों के बल पर मुझ से यह स्वीकार कराना

चाहते हो ? हत्या का रोमांचक बयान सुना कर मेरे चेहरे की रीडिंग से मुझे अपने पिता का हत्यारा साबित करना चाहते हो ? अपना अपराध मेरे सिर पर लादना चाहते हो ?

जतीन : (चौंक कर) अपना अपराध ?.....यानी तुम भी कहना चाहते हो कि पिताजी की हत्या मैं ने की है ?.....

अजित : पुलिस यही समझती है। लोगों का यही ख़्याल है; वरना तुम उसी रात गायब क्यों होते ?

जतीन : ओह ! (अजित का हाथ अपनी मुट्ठी में जकड़ते हुए) सच बताओ, शकुन्तला क्या समझती है ? क्या तुम ने उस के दिमाग में भी यही ज़हर भर दिया है ?

अजित : (घबरा कर) मेरा हाथ छोड़ दो.....मेरा हाथ छोड़ दो, नहीं तो.....

जतीन : (बात काट कर) तुम्हें भी शूट कर दूँगा, हूँ ? लेकिन अब ऐसा न हो सकेगा। अब मेरा दाँव है। मेरे सवाल का जवाब दो।

अजित : (हाथ छुड़ाने की निरर्थक चेष्टा कर) कौन सा सवाल ?

जतीन : क्या शकुन्तला का यही ख़्याल है कि पिताजी का ख़ून मैं ने किया है, और इसीलिए मैं उस रात यकायक गायब हो गया था ?

अजित : (एक क्षण ठहर कर) हाँ.....

जतीन : (कुछ सोचता-सा) तो फिर आज मुझे सब बातें

स्पष्ट ही करनी होंगी। पुलिस और दुनिया की मुझे परवाह नहीं, (अपनी मुट्ठी जकड़ते हुए) कम से कम शकुन्तला तो धोखे में न रहे। (अजित पर एक कड़ी दृष्टि डाल) मैं उसके सामने तुम से सब बातें स्वीकार करवाऊँगा।

अजित : (चीख़ कर) मैं यह बात कभी स्वीकार नहीं करूँगा, कभी नहीं। (हाथ छुड़ाने की चेष्टा करता है) मेरा हाथ छोड़ दो.....ओऽऽऽ.....

जतीन : तुम स्वीकार नहीं करोगे ?.....तो मुझे शकुन्तला के सामने तुम्हें हिप्नोटाइज़ करना होगा और तब तुम्हारे अंदर का अजित अपने आप एक-एक बात प्रकट कर देगा।

अजित : (चौंक कर) हिप्नोटाइज़ ?

जतीन : हाँ, हिप्नोटाइज़, तब तुम बेहोशी की उस हालत में अपनी आंतरिक प्रेरणा के कारण वह सब कुछ कह दोगे, जिसे अब तक तुम पूरे जतन के साथ छिपाते आये हो। (हँसता है)

अजित : ओह !.....

[जतीन एक विजयी हँसी हँस कर अजित का हाथ छोड़ देता है। अजित अत्यंत शिथिल हो कटे वृक्ष के समान सोफे पर गिर जाता है। बाहर बिजली जोर से कड़कती है।]

जतीन : (एक फीकी मुस्कान के साथ) ख़ैर, तुम ने स्वीकार तो किया। लेकिन अब इसके अलावा चारा भी तो न था। अपराध करना पाप नहीं है, पाप है

उन्हें स्वीकार न करना। अब तक तुम अपराधी और पापी दोनों थे, लेकिन अब तुम केवल अपराधी हो, जिस ने अपने मित्र के साथ—जो उसे सगे भाई से भी ज़्यादा समझता था—विश्वासघात किया। अपने पिता-तुल्य उस के पिता की हत्या की। उस की प्रेमिका को फुसला कर उस से स्वयं विवाह कर लिया, और अपने मित्र के लिए फाँसी का फंदा सदैव झूलता हुआ तैयार रखा.....

अजित : (कानों पर हाथ रखते हुए) ओह! (परेशान और पीड़ित स्वर में) आख़िर तुम चाहते क्या हो?

जतीन : (हिंसक मुस्कान से) प्रतिशोध !!.....(कुर्सी पर बैठता है)

अजित : (सिहर उठता है, कुछ क्षण ठहर कर) लेकिन मेरे फाँसी पर चढ़ जाने से तुम्हारा प्रतिशोध कैसे पूरा होगा?.....मेरी क्या हानि होगी? मरना तो एक दिन है ही। लेकिन जीवन तो नष्ट शकुन्तला का होगा। तुम मुझ से नहीं, बल्कि उस से प्रतिशोध लोगे।

जतीन : (रूखे स्वर में) मैं उस से भी प्रतिशोध लेना चाहता हूँ।

अजित : (सविस्मय) शकुन से?.....शकुन से प्रतिशोध लोगे?

जतीन : (रूखे स्वर में) हाँ, उस ने मुझे धोखा दे, मेरे प्रेम को ठुकराया है। मुझ से प्रेम का ढोंग रचते

हुए उस ने उस शाम तुम्हारी बनना स्वीकार किया। काश! वह यही कह देती कि वह मुझ से प्रेम नहीं करती.....(ठहर कर) लेकिन वह कहती कैसे?.....वह स्त्री जो थी—एक छल, एक वंचना। बेवफ़ा औरत। एक से प्रेम करेगी, दूसरे से विवाह!.....एक का दिल तोड़ देगी और उसका फ़ोटो चूमेगी। उसकी यादगारों को खुशबूदार रेशमी रूमालों की तह में सुरक्षित रखेगी; लेकिन उसे ईर्ष्या की अग्नि में जलते देख प्रसन्न होगी!.....

अजित : जतीन, तुम यह गलत कह रहे हो। शकुन सचमुच ही तुम से प्रेम करती थी।

जतीन : (व्यंग्य मुस्कान से) मुझ से प्रेम करती थी!..... हाँ, तभी तो उस ने तुम से विवाह किया। तभी तो वह मुझे बिल्कुल भूल गयी—बिल्कुल! (कुछ रुक कर) ठीक भी है। स्त्री के लिए किसी को प्रेम कर भूल जाने से सहल और है ही क्या?

अजित : नहीं जतीन नहीं, शकुन ऐसी नहीं है। विश्वास करो, वह तुम्हें भूली नहीं है। भूल भी कैसे सकती है?.....इस दो साल के दौरान में एक भी दिन ऐसा नहीं बीता, जब उस ने तुम्हारी याद में आँसू न बहाये हों।

जतीन : आँसू—धोखे का पहला प्रमाण?.....तभी तो आज वह मुझे न पहचान सकी? केवल दो साल के अरसे में ही.....

अजित : (बात काट कर) उस ने तुम्हें पहचान लिया था। अंदर यह बात उस ने मुझ से कही।

[जतीन चौंक कर कुर्सी पर से उठता है, किंतु उठकर रह ही जाता है।]

जतीन : मैं यह बात नहीं मान सकता।

अजित : क्योंकि तुम उस से दूर ही रहे हो। तुम ने उस का अंतर पढ़ने की चेष्टा कभी नहीं की। लेकिन मुझे उस के बहुत ही निकट आना पड़ा है, और उसी आधार पर मैं यह कह रहा हूँ। वह अब तक तुम्हारे प्रेम में जल रही है। चौंको मत। इस डेढ़ साल के विवाहित जीवन में मैं एक भी दिन उसका प्रेम नहीं पा सका हूँ। मेरे सामने उस का केवल शरीर ही रहा है.....

जतीन : (बात काट कर) और वही तुम चाहते थे।

अजित : (लज्जित भाव से) मेरे प्रति इतना कठोर न बनो जतीन! मैं भी शकुन से प्रेम करता था। उस के प्रेम में ही अंधे हो, मुझे हित-अहित का ज्ञान न रहा। उस समय तो मैं उसे किसी न किसी भी प्रकार अपनी बनाना चाहता था। इसलिए मैं ने तुम्हारे विषय में बहुत कुछ झूठ-सच कहा—साथ ही तुम्हें भी कुछ गलतफ़हमी हुई। (ठहर कर) खून की रात तुम्हारे यकायक लोप हो जाने के बाद, शकुन को अपनी ओर झुकाने का प्रयास मैं बराबर करता रहा और इस में मुझे सफलता भी मिली।

[जतीन मूर्त्ति के समान निश्चल खड़ा सुन रहा है। उसका मुँह धुँधला पड़ता जा रहा है। बाहर अभी तक बारिश हो रही है। बीच-बीच में बिजली चमक उठती है।]

अजित : उस ने मुझ से विवाह इसलिए नहीं किया कि वह मुझ से प्रेम करती थी, बल्कि इसलिए कि वह मेरे उपकारों का बदला चुकाना चाहती थी। इस विवाह में उस बेचारी का कुछ भी दोष नहीं है। शादी के बाद वह एक भी दिन खुश नहीं रही है। हमेशा हिस्टेरिक-सी रहती है। (रुक कर) मैं भी यह विवाह कर पछताया ही हूँ जतीन। तुम उस पति के दिल की हालत का अंदाज़ा नहीं कर सकते, जिस की पत्नी एक दूसरे पुरुष के प्रेम में पागल हो। (एक क्षण रुक, हाथ जोड़ कर) मैं तुम से प्रार्थना करता हूँ जतीन, शकुन के प्रति अपनी प्रतिहिंसा त्याग दो। उस से प्रतिशोध मत लो। वह तो अपने आप ही मरी हुई है। उसे क्षमा कर दो।

जतीन : (जैसे स्वप्न में बोल रहा हो) उसे क्षमा करना, मेरे लिए भावुकता होगी। वह मुझे जितनी हानि पहुँचा सकती थी, पहुँचा चुकी। उस ने मेरा जीवन नष्ट कर दिया। मेरे जीवन में से आशा और शांति को निकाल कर अलग फेंक दिया..... आज ज़िंदा होते हुए भी मैं मरे से बदतर हूँ।

अजित : तो तुम उस दुर्बल स्त्री को क्षमा नहीं कर सकते।

उस से अपनी हानियों का बदला अवश्य लोगे उस से—जिस से अधिक प्रिय वस्तु तुम्हें संसार में और कोई न थी.....जिसे तुम अपने जीवन का प्रकाश मानते थे.....जिस का प्रेम ज़हर की तरह तुम्हारी नस-नस में समा गया था.....

जतीन : (चीख़ कर) अजित !.....

अजित : (अपने ध्यान में) जिस की प्रसन्नता के वास्ते तुम ने अपने को तबाह कर लिया.....जिस को सुखी बनाने के लिए तुम उस के जीवन में से बिल्कुल निकल गये, इस तरह जैसे कि तुम उसके जीवन में कभी आये ही न थे.....

जतीन : (चीख़ कर) अजित ! चुप हो जाओ.....

अजित : (बिना रुके हुए) जानते हो जतीन, वह बहुत जल्द माँ बनने वाली है (सोफ़े पर से अधबुना स्वेटर उठा कर) यह देखो.....होने वाले बेबी का अधूरा स्वेटर—ठीक उस के अधूरे सपनों की तरह..... उसे यदि तुम्हारे विचारों का पता लग जाय, तो वह अपने को ख़तम कर लेगी, यह निश्चय है। इस तरह तुम एक नहीं, दो हत्याओं के उत्तरदायी होगे।

जतीन : (अत्यधिक परेशान हो कर) मैं कहता हूँ बंद करो यह सब। (विवश स्वर में) आख़िर तुम चाहते क्या हो ?

अजित : ठीक यही सवाल थोड़ी देर पहले मैं ने तुम से किया था।

[जतीन कुछ सोचता हुआ तेजी से टहलने लगता है। बाहर आँधी-पानी का वेग अब कम हो गया है। तूफान शांत होने लग रहा है। बिजली चमकनी बंद हो गयी है। कमरे में बिल्कुल खामोशी है।]

अजित : (बाहर देखता हुआ) *तूफ़ान शांत हो रहा है। बारिश भी बन्द हो गयी है। थोड़ी देर में पहले ही जैसा वातावरण हो जायगा।*

जतीन : (अपने ध्यान में डूबा हुआ) *हाँ, तूफ़ान शांत हो रहा है! (रुक कर) अजित क्या तुम थोड़ी देर के लिए मुझे अकेला छोड़ोगे?*

अजित : (तत्परता से) *मैं अंदर जा रहा हूँ।*

[अजित का अंदर प्रस्थान। जतीन अभी तक कमरे में चहल-कदमी कर रहा है। सहसा टेलिफोन के पास जाता है। रिसीवर उठाता है। एक क्षण कुछ सोचते-से रहने के बाद रिसीवर रख देता है। परेशान भाव से तब कुर्सी पर बैठ जाता है, और मेज पर पड़े हुए पैड पर एक पत्र लिखने लगता है। पत्र लिख उसे मोड़ कर लिफाफे में बंद कर देता है और फिर लिफाफे पर कुछ लिखने लगता है।

हठात् शकुन्तला का मधुर भाव से प्रवेश। जतीन चौंक उठता है।]

शकुन्तला : (अत्यंत शांत स्वर से) *मैं तुम्हें पहचानती हूँ जतीन!*

जतीन : (पीड़ित स्वर में) *जतीन!.....आह!.....यह*

नाम कभी मेरा था, अब नहीं।

शकुन्तला : (शरद्कालीन फुहार जैसी मुस्कराहट चेहरे पर आ जाती है) *क्यों ?*

जतीन : (गंभीर हो कर) *क्यों ?*.....(इधर-उधर देख, मेज़ पर से काँच का गुलदस्ता उठा कर फ़र्श पर पटक देता है, जो चकनाचूर हो जाता है। एक टुकड़े को उठा कर) *क्या अब आप इस टुकड़े को गुलदस्ता कह सकेंगी ?.....शायद नहीं। ठीक इसी तरह जतीन भी टूट गया है। मैं तो जतीन की भूली हुई-सी एक याद हूँ।*

शकुन्तला : (समवेदनापूर्वक) *क्यों अपने जीवन के साथ इस प्रकार खिलवाड़ कर रहे हो जतीन ?*

जतीन : (व्यंग्य मुस्कान सहित) *और तुम ?.....जिसे बात-बात पर फ़िट आ जाते हैं।*

शकुन्तला : (गंभीरतापूर्वक) *मुझे फ़िट किस कारण आते हैं यह विचारा है तुम ने ?*

जतीन : *मेरे दिमाग को अब इस तरह की बातें सोचने की आदत नहीं रही। तुम स्वयं ही बताओ।*

शकुन्तला : *निष्ठुर !.....यह मुझे ही बताना होगा।* (जतीन के बिल्कुल निकट आ, उसकी आँखों से आँखें मिला) *तुम एकबारगी ही मुझे ख़तम नहीं कर सकते ? मैं बहुत शांति से मरूँगी। लेकिन इस तरह जला-जला कर मारना.....*

जतीन : (जोर से हँसता है, फिर काँप उठता है, जैसे वह हँस उसकी रीढ़ की हड्डी में झनझना उठी हो) *मैं और*

तुम्हारी हत्या ?.....तो तुम्हारा ख़्याल है कि अपने पिता की हत्या करने वाला अपने मित्र की पत्नी की भी हत्या कर सकता है ! लेकिन मैं तुम्हें बतला दूँ, तुम्हारा यह सोचना बिल्कुल ग़लत है। (एक क्षण रुक, सम्हल कर) जतीन के प्रेत को तुमसे कोई शिकायत नहीं है।

शकुन्तला : (हिस्टेरिक स्वर में) क्यों नहीं है ?.....क्या तुम मुझ से प्रेम नहीं करते ?

जतीन : (चौंक कर) शकुन !

शकुन्तला : (उसी प्रकार) क्या तुम हसद करना नहीं जानते ? .....बोलो !

जतीन : शकुन तुम से विवाह कर मैं तुम्हें सुखी न रख सकता था.....और न स्वयं मैं ही.....(रुक कर) तुम्हें सुखी कर मैं अब हसद क्यों करूँगा ?

शकुन्तला : (रोते स्वर में) मुझे सुखी देख कर!.....ओह ! .....यह तुम्हें हो क्या है ?

जतीन : क्यों क्या तुम सुखी नहीं हो ? मुझे इस तरह जलता देख कर भी ?.....लेकिन तुम ने तो शायद मुझे हसद की आग में जलता हुआ देखने के लिए अजित से विवाह किया था, पापों की आग में जलता देखने के लिए नहीं.....मुझे अफ़सोस है शकुन, मैं तुम्हारी कामना न पूरी कर सका। काश ! मैं हसद से जल सकता !

शकुन्तला : (तड़प कर) जतीन ! अगर तुम नहीं चाहते कि मैं तुम्हारे सामने और अधिक रहूँ, तो मैं अंदर

चली जाती हूँ।

जतीन : (निर्विकार स्वर में) उसकी आवश्यकता न होगी। मैं स्वयं जा रहा हूँ.....(रुक कर) हाँ देखो, अजित अंदर क्या कर रहा है? जरा उसे यहाँ भेज सकती हो?

शकुन्तला : वह बाथ-रूम मे है। थोड़ी देर में आ सकेगा।

जतीन : (सोचता-सा) अच्छा, तो मैं चलूँगा। तूफ़ान अब ख़तम हो गया है और आसमान भी साफ़ हो चला है।

शकुन्तला : (हिस्टेरिक स्वर में) इस तरह ही जाना था तो आये क्यों थे?

जतीन : यह तूफ़ान क्यों आया था?

शकुन्तला : (हिस्टेरिक स्वर में) तो जाओ मत.....इस तूफ़ान को मौत तक सजीव रहने दो।

जतीन : तूफ़ान हमेशा थोड़ी ही देर के लिए होता है, सदैव के लिए नहीं; और उसके समाप्त होते ही प्रकृति शांत हो जाती है। (रुक कर) तुम्हारे जीवन के लिए मेरा जाना अत्यंत आवश्यक है।

शकुन्तला : (उसी प्रकार) क्यों?

जतीन : मैं ने एक पुस्तक में पढ़ा था—'स्त्री का असली जीवन तभी विकसित होता है, जब कोई पुरुष उस के लिए अपने को मिटा चुका होता है—वह पुरुष चाहे उसका पति हो या प्रेमी।'.....और शकुन मुझे तुम से प्रेम था.....

[कमरे में खँडहरों जैसी खामोशी फैल जाती है।]

जतीन : (अचानक, झटका-सा खा कर) मैं जा रहा हूँ शकुन। तुम पर अविश्वास करूँ—ऐसा कोई कारण नहीं देखता; मेज़ पर पड़ा वह पत्र अजित को दे देना—वह सिर्फ़ उसी के लिए है..... अच्छा, विदा! तुम्हारी नई दुनिया तुम्हें मुबारक हो!

[जतीन का तेज कदमों से बाहर प्रस्थान। शकुन्तला ठगी-सी खड़ी रह जाती है। सजल नेत्रों से वह दरवाजे की ओर देखती रहती है।

तभी अजित का हड़बड़ा कर प्रवेश।]

अजित : (साश्चर्य) अरे शकुन, तुम रो रही हो! क्यों, क्या हुआ?.....जतीन कहाँ है?

शकुन्तला : (रुँधे गले से) वह गया।

अजित : (आतुर स्वर में) कहाँ गया?

शकुन्तला : (अत्यंत रूखे स्वर में) मुझे नहीं मालूम। मेज़ पर तुम्हारे लिए एक पत्र छोड़ गया है।

[अजित मेज़ की ओर लपकता है। लिफाफा खोल कर जल्दी-जल्दी पत्र पढ़ने लगता है। साथ ही साथ उसके चेहरे का रंग भी काला पड़ता जाता है।]

अजित : (टूटे स्वर में) ओह! (धम्म से कुर्सी पर बैठ जाता है)

शकुन्तला : (अजित के निकट आकर, व्यग्रतापूर्वक) इस पत्र में

क्या लिखा है ?.....(हिस्टेरिक स्वर में, जोर से) मैं इसे ज़रूर पढ़ूँगी.....(रोने लगती है) तुम लोग मुझ से कुछ छिपा रहे हो !.....मैं इस पत्र को ज़रूर देखूँगी.....(अजित के हाथ से पत्र घसीट लेती है, काँपते स्वर में पढ़ने लगती है)—

प्रिय अजित,

मैं जा रहा हूँ—हमेशा-हमेशा के लिए। और साथ ही तुम्हारी सारी चिंतायें व परेशानियाँ अपने साथ लिये जा रहा हूँ। मैं ने निश्चय कर लिया है, पुलिस-स्टेशन जा कर, पिता जी की हत्या का अपराध स्वीकार कर लूँगा। मेरे जैसा व्यक्ति—जिस ने ज़िंदगी के रास्ते पर चलते हुए, अपने क़दम हमेशा ही गलत तरीके पर उठाये हैं—ऐसा ही प्रतिशोध ले सकता है। मैं यह सब शकुन को सुखी व प्रसन्न रखने के लिए कर रहा हूँ। तुम तो जानते हो मैं शकुन से प्रेम करता हूँ, और मेरे कोष में प्रेम त्याग का ही दूसरा नाम है। तुम से प्रार्थना है शकुन को जाने-अनजाने कभी कोई कष्ट न होने देना !.....

तुम्हारा दोस्त
जतीन

[पत्र समाप्त करते ही शकुन्तला अपने सिर को बायें हाथ से थामने की चेष्टा करती है, किंतु मूर्च्छित हो कर नीचे गिर पड़ती है।

अजित घबरा कर उठता है और उसका सिर अपनी गोद में ले लेता है।]

अजित : (काँपते स्वर में) *शकुन-शकुन !*.....(आवाज़ देता है) *अरे बंसी, थोड़ा पानी लाना..... जल्दी ऽ ऽ ऽ*

[चारों ओर नीरवता छायी है। वर्षा अब रुक गयी है। केवल पानी की बूँदों के वृक्षों पर से टीन पर गिरने की आवाज कभी-कभी सुनायी पड़ जाती है।

सहसा घड़ी में आठ के घंटे बजते हैं। उसके बाद ही युनिवर्सिटी की घड़ी के घंटों की आवाज सुनायी देती है—फिर पुलिस-लाइन के घंटों की; और फिर हॉस्पिटल के घंटों की—जो धीरे-धीरे शून्य में विलीन हो जाती है।

कमरे में हल्की रोशनी और गहरा सन्नाटा है।]

[परदा गिरता है]

तार के खंभे

भगवंतपुर
जून-जुलाई—४३

साँवल वर्मा
को

['समाज सेवक समिति' के आफ़िस का एक कमरा। कमरे में एक दूसरे के सामने ठीक दो दरवाजे हैं। अन्य दीवारों की अपेक्षा कमरे की पिछली दीवार भली-भाँति दिखायी देती है, जिस पर हलके रंगों से एक चित्र अंकित है। चित्र में नीला आकाश, सफेद बादलों और कुछ उड़ते हुए पक्षियों के साथ दर्शाया गया है। दो-तीन तार के खंभे भी तारों से बिंधे हुए तिरछे रूप में खड़े हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि दीवार का यह चित्र रेल में सफर करते समय (कहीं गाड़ी सहसा खड़ी हो जाने पर) तिरछे एँगिल से कैमरे द्वारा खींचा गया है और बाद में किसी ने उसे हल्के शेड्स में दीवार पर सफलतापूर्वक उतार दिया है।

कमरे में उतना ही सामान है जितना कि इस प्रकार के आफिसों में होता है। बायें दरवाजे के पास तीन टीन की कुर्सियाँ और एक मेज़ है—मेज़, जो फाइलों और रजिस्टरों के बोझ से तो नहीं, लेकिन अपने ही बोझ से लदी हुई तथा क्लांत प्रतीत होती है। कुर्सियों पर दो व्यक्ति बैठे हुए समाचार पत्र पढ़ रहे हैं। एक चश्माधारी नवयुवक दाहिने कोने में कैंची और लेई की सहायता से अख़बारों की विशेष कतरनें

फ़ाइल में चिपका रहा। चौथा युवक—जिस ने एक आधी आस्तीन की कमीज और पतलून पहन रखी है—कमरे के मध्य में स्टेन्ड पर एक चित्र बनाने में व्यस्त है। उसने स्टूल पर अपना बायाँ पैर रखा है। रंगों की प्लेट उसके बायें हाथ में है।

कमरे के दाहिने कोने में एक सुराही, क़लईदार लोटा और निकट ही एक झाड़ू भी उपेक्षापूर्वक रखा हुआ दीख पड़ता है।

दीवार की घड़ी में बारह बज कर दस मिनट हुए हैं।

अख़बार पढ़ने वाले महाशयों में से एक, जिन के हाथ में बेंत की एक पतली लखनवी छड़ी है, उठ कर बुरी तरह जम्हाई लेते हुए युवक चित्रकार के निकट आते हैं।]

महाशय : *हैलो अनुपम !*

अनुपम : (मुड़ कर, पीछे देख कर) *अक्खा तिवारी जी हैं। कहो भई कब आये ? आज एक अरसे के बाद दिखलायी पड़ रहे हो।*

तिवारी : (व्यंगपूर्वक) *देख लिया आप ने मुझे ?.....चलिये ग़नीमत है !*

अनुपम : *क्यों, क्या बहुत देर हो गयी आप को आये हुए ?*

तिवारी : (छड़ी घुमाते हुए) *जी हाँ, काफ़ी समय हो गया। आप तो चित्र बनाने में इतने डूबे हुए थे कि कहा नहीं जा सकता। आप की तल्लीनता देख कर मैं ने आप को डिस्टर्बित करना उचित न समझा। चुपचाप अख़बार पढ़ने लग गया।*

अनुपम : *क्या कहा ?.....डिस्टर्बित ? .....(हँसता है) ख़ूब !.....*

तिवारी : (हँसते हुए) शब्द-समस्या को इसी प्रकार हल किया जा सकता है। (तनिक चुप रह) तो कब तक पूरा हो जायगा तुम्हारा यह चित्र !

अनुपम : (हँसता है, जैसे तिवारी का उपहास कर रहा बड़ा विचित्र सवाल है।

तिवारी : (खिसिया कर) क्यों, क्या बात विचित्र है ?

अनुपम : चित्र कब पूरा होगा—इस विषय में मैं क्या कह सकता हूँ ? ईश्वर अवश्य कह सकता है—यदि उस का अस्तित्व है तो ?

तिवारी : (कुछ परेशानी से) क्या मतलब ?

अनुपम : (हाथ फैलाता हुआ) मतलब यह कि मैं कोई निश्चित तारीख़ नहीं दे सकता कि फ़लानी तारीख़ को यह चित्र समाप्त हो जायगा। हो सकता है, यह दो हफ़्ते और ले; या यह भी हो सकता है कि अभी यह महीनों तक और चले।

तिवारी : (लज्जित-सा) हाँ, हो सकता है।

अनुपम : और इसका भी मतलब यह है कि चित्रकार की दृष्टि में उस का चित्र सदैव ही अपूर्ण रहता है। हर बार उसे अपनी रचना में कोई न कोई कमी या खटकने वाली वस्तु दीख पड़ती है और वह उसे ठीक करते समय यही सोचता है कि चित्र की समाप्ति में अभी और समय लगेगा। (ठहर कर) अंत में एक दिन ऐसा आ जाता है कि वह ऊब उठता है और कह देता है कि उस का चित्र पूरा हो गया है, यद्यपि वह अच्छी तरह जानता

है कि यह झूठ है और वह लोगों के साथ अपने को भी धोखा दे रहा है। समझे जी तिवारी महाशय। (फिर रुक कर, तिवारी के कंधे पर हाथ मार मुस्कराते हुए) हटाओ जी इन बातों को। असली बात तो आप छोड़ ही बैठे। कहाँ रहे इतने दिनों तक? बहुत दिनों बाद आये हो?

तिवारी : (हँसता हुआ-सा) हाँ ऽऽऽ। पूरे एक माह बाद आया हूँ.....लेकिन मैं तो प्रधान जी से कह कर गया था। (तनिक ठहर कर) मैं क्या गया था, बल्कि उन्होंने ही मुझे भेजा था। उन्होंने क्या कहा नहीं?

अनुपम : नहीं तो। इस सम्बन्ध में कभी बात तक भी नहीं हुई। हाँ, एक दिन प्रधान जी यह अवश्य कह रहे थे कि समिति के कार्यकर्त्ता आजकल इधर-उधर बिखरे हुए हैं, इस कारण यहाँ का काम बहुत ढीला पड़ रहा है। रशीद और दिवाकर भी दो-तीन हफ़्तों से समिति से गोल हैं। शायद वे भी कहीं बाहर गये हुए हों।

तिवारी : दिवाकर की बाबत तो मैं जानता हूँ। उस का एक पत्र आया था। वह अपने ससुर की आँख का ऑप्रेशन करवाने दिल्ली गया हुआ है। वहाँ शायद वह श्रद्धानंद अनाथाश्रम की रिपोर्ट तैयार कर रहा होगा। इस तरह एक पंथ दो काज हो गये। (खिसियानी-सी हँसी हँसता है)

अनुपम : (व्यंगपूर्वक) एक पंथ दो काज.....ठीक है। और

आप कहाँ गये थे ? (अकस्मात्) मा कीजियेगा, कहाँ भेजे गये थे ?

तिवारी : (सफ़ाई-सी देता हुआ) अख़बार में तो पढ़ा ही होगा। पिछले महीने देहरादून में रिस्पना के किनारे बसे हुए चमारों के झोंपड़ों में भीषण आग लगी थी। आध मील की तमाम बस्ती राख हो गयी थी। सभी सेवा-समिति आदि के प्रतिनिधि वहाँ गये थे। अपनी समिति की ओर से मैं गया था। (कुछ काँप कर) ओफ़ ! बहुत पिटियेबल साइट थी। उन लोगों का रोना-धोना .....उन लोगों की बेबसी.....ओफ़ ओ ! (अनुपम को सोचते हुए देख) घर में चोर आता है तो सब कुछ नहीं ले जाता, कुछ न कुछ तो छोड़ ही देता है ; पर घर में आग लगती है तो कुछ भी चीज़ नहीं बचती—सोने के लिए फटी गूदड़ी तक नहीं; पानी पीने के लिए टूटी कटोरी तक नहीं। (तनिक चुप रह कर) हम लोगों ने वहाँ कई मीटिंगें कीं, दिल पिघलाने वाले भाषण दिये। जनता से रूपया इकट्ठा किया। राशनिंग ऑफ़िस से उन बेचारे मुसीबतज़दों को अनाज दिलवाया .....तुम ने तो यह सब पेपर में पढ़ा ही होगा। निकला तो था.....मेरा नाम भी था।

अनुपम : (बात अनसुनी कर) तिवारी जी महाशय, आपकी ससुराल भी शायद देहरादून में ही है ?

तिवारी : (सिर हिलाते हुए, हिचकिचाते स्वर में) हाँ है तो

लेकिन.....

अनुपम : (बात काट कर) और आप शायद इस बार अपने साथ अपनी श्रीमती जी को भी यहाँ ले आये हैं जो शायद एक लंबे अरसे से मायके में थीं (तिवारी को कुछ भी कहने का अवसर न देता हुआ) और शायद जिन की मौजूदगी की सख़्त ज़रूरत आप काफ़ी समय से अनुभव कर रहे थे।

तिवारी : (अपनी आवाज़ में कठोरता लाते हुए) मिस्टर अनुपम, आप क्या कह रहे हैं ?

अनुपम : (स्टूल पर पैर रखता हुआ) जो आप सुन रहे हैं। (तनिक ठहर कर) आप शायद ये बातें सुनना नहीं चाहते थे। आप चाहते थे कि मैं आप को आप की समाज-सेवा के लिए बधाई दूँ। आप की पीठ थपथपाऊँ। आप की प्रशंसा करूँ; जैसी कि हम सब की आदत है। और आप मन में खुशी के मारे कुप्पा हो कर, किंतु प्रकट में अत्यंत नम्र बन कर कहें —(नक़ल करता है) "अजी मैं किस योग्य हूँ ? सब आप लोगों की कृपा है.....अजी यह तो मेरा कर्त्तव्य था। मैं ने तो अपना तमाम जीवन समाज-सेवा के लिए ही दे दिया है।" (रुक कर) माफ़ कीजियेगा, आप के ही एक सहयोगी कार्यकर्त्ता की हैसियत से मैं यह झूठी एक्टिंग नहीं कर सकता।

तिवारी : (बौखलाये-से) मिस्टर अनुपम, तुम.....तुम्हारा दिमाग इस समय ठीक नहीं है। ख़ासी बहकी

बातें कर रहे हो। मैं.....

[अख़बार पढ़ने वाला युवक और चश्माधारी चौंक कर इन दोनों के पास आ जाते हैं और तिवारी जी को पीछे ले जाते हैं जो शायद इस के लिए तैयार ही हैं। तिवारी को कुर्सी पर बैठा कर अख़बार वाला युवक अख़बार द्वारा तिवारी को हवा करता है। चश्माधारी युवक अनुपम की ओर बढ़ता है।]

अनुपम : (तिवारी को देखता हुआ) *दिवाकर वाली बात ठीक यहाँ पर भी है—एक पंथ दो काज.....* (चेहरे पर व्यंग-मुस्कान)

चश्माधारी : (बँगला टोन में) *बी क्वायट अनुपम! अरे आज इतने प्यूरियस क्यों हो रहे हो?.....व्हाट इज़ द मैटर?*

अनुपम : *नथिंग कॉमरेड। आज कुछ ऐसी बातें कह डालीं, जो बहुत दिनों से मन के अंदर घूम रहीं थीं।*

चश्माधारी : *तुम्हारी बात कुछ समझ में नहीं आ रही है।*

[अनुपम कोई उत्तर न देकर निर्विकार भाव से फिर चित्र बनाने लग जाता है। तिवारी महाशय बीच में मुड़-मुड़ कर अनुपम की ओर देख लेते हैं। चश्माधारी अपनी जगह पर लौट आता है और अख़बार की कतरनें बटोरने लगता है। कुछ मिनट इसी प्रकार शांति से व्यतीत होते हैं।

सहसा एक नवयुवक का कुछ अख़बार लिये हुए प्रवेश। वह खद्दर की धोती-कुर्त्ता पहने हुए है।

चेहरे और गले पर पसीने की बूँदें। अख़बारों को वह ज़ोर से मेज़ पर पटकता है। इस खटके से कमरे के चारों व्यक्ति अपना सिर उठाते हैं। अनुपम के अतिरिक्त तीनों फिर बुझी लाजवंती की भाँति अपना सिर झुका लेते हैं। अनुपम को एकटक अपनी ओर देखता हुआ पा कर वह युवक अनुपम की ओर बढ़ता है।]

युवक : (उँगली से माथे का पसीना पोंछते हुए) *उफ़्फोऽऽऽ, थक गये हम तो। गर्मी ने अलग मार दिया। तुम्हीं मज़े में हो भाई। कम से कम साये में तो बैठे हो।*

अनुपम : (उसी की ओर देखता हुआ) *क्यों-क्यों, ख़ैरियत तो है? क्या फावड़े बजा कर आ रहे हो?*

युवक : *उस से भी कहीं ज़्यादा।* (ज़रा चुप रह कर) *आज काम पूरा करके ही आया हूँ। कई दिन हो गये थे दौड़ते-दौड़ते।*

अनुपम : (माथे पर चंद बल डाल कर) *क्या काम?*

युवक : *अरे वही पुस्तकालय वाला। आज साप्ताहिक 'बिजली' में अनाथ बच्चों के लिए किताबों की अपील निकलवा ही दी है। वैसे दैनिक 'संसार' में तो उस दिन शाम के एडिशन से ही अपील निकलनी शुरू हो गयी थी जिस दिन प्रधान जी ने अनाथालय में बच्चों को उस पुस्तक के लिए धक्का-मुक्की और गाली-गलौज करते हुए देखा-सुना था।* (तनिक ठहर कर) *और किताब क्या*

थी भला वह......'बाल रघुवंश'

अनुपम : हूँ......

युवक : (अनुपम को चुप देख) वैसे कोशिश तो यह भी कर रहा था मैं कि किताबों की अपील संपादकीय नोट के साथ मासिक 'जागृति' में भी निकल जाय। इस सिलसिले में 'उज्ज्वल' जी से भी मिला था। पेपर कंट्रोल के कारण वे बेचारे अपनी विवशता प्रकट कर रहे थे। कह रहे थे कि पत्रिका पहले ही अड़तालीस पन्नों की जा रही है, उस में तो ज़रा भी गुंजाइश नहीं है। (थोड़ा चुप रह) आदमी बहुत सज्जन हैं। अपना तमाम समय सार्वजनिक सेवाओं में ही लगाते हैं। बहुत सहानुभूति प्रकट कर रहे थे बेचारे किताबों के उन इच्छुक व शौक़ीन बालकों के वास्ते। यह भी कह रहे थे कि बच्चों के वास्ते किताबें तो उनके प्रेस में भी पड़ी होंगी—समालोचना आदि के लिए आ जाती हैं न—परंतु उन का ढूँढ़ निकालना बहुत ही कठिन होगा।

अनुपम : (व्यंग मुस्कान के साथ) हूँ, बहुत दयालु और करुण-हृदय हैं तुम्हारे संपादक जी। शायद जेल भी हो आये होंगे एक-दो बार।

युवक : हाँ, शायद सन बयालीस के आन्दोलन में जेल भी हो आये हैं। क्यों, क्या तुम उन्हें जानते हो?

अनुपम : नहीं, मैं ने तो अंदाज़े से कहा। बात यह है कि सार्वजनिक कार्यकर्ताओं और नेताओं के लिए

जेल जाना भी तो बहुत आवश्यक चीज़ है न !

युवक : (चकित-सा हो कर) जेल जाना आवश्यक है ! .....क्यों ?.....क्या मतलब है तुम्हारा इस से ?

अनुपम : तुम मतलब नहीं समझ सके ?.....जब यह इतनी गूढ़ बात है तो हटाओ इसे। (सहसा) हाँ, देखें ज़रा तुम्हारी साप्ताहिक वाली अपील।

युवक : (प्रसन्न हो कर) हाँ, अभी लो। (मुड़ता है और मेज़ पर से अख़बार खोल कर लाता हुआ) अपील बहुत प्रभावशाली और हृदयस्पर्शी है। बहुत दिमाग़ ख़र्च करना पड़ा है मुझे इसे लिखने में। (अख़बार अनुपम को थमाता हुआ) एक पूरी रात जागरण किया गया है इस के लिए। (मुख पर गर्व-मुद्रा छा जाती है)

अनुपम : (पढ़ता है)

"आप से एक नम्र निवेदन
आप के अनाथ बालक आप लोगों के भरोसे किताबों के लिए तरस रहे हैं—उन निस्सहाय बालकों को मत भूलिये।

सर्व-साधारण इस बात से अभिज्ञ होंगे कि बालकों को पुस्तकें पढ़ने का कितना अधिक चाव होता है, किंतु सामयिक परिस्थितियाँ कुछ ऐसी विकृत हो गयी हैं कि आप के अनाथ बालकों को पुस्तकावलोकन की अंतःकरणीय वृत्ति स्थगित कर रखनी पड़ रही है। अनाथालय में बालकों के पढ़ने योग्य पुस्तकें न्यून संख्या में हैं, जब कि

बालकों की संख्या प्रतिवर्ष बढ़ रही है। बालकों के उत्कट पुस्तक-प्रेम को देखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि उनके लिए एक सुन्दर पुस्तकालय स्थापित किया जाय, जिस से उनके ज्ञान-विज्ञान की वृद्धि हो। इस वृद्धि का एकमात्र साधन पुस्तकें ही हैं। अतएव आप लोगों से प्रार्थना व आशा की जाती है कि आप धन अथवा पुस्तकों द्वारा पुस्तकालय स्थापित कराने में हमारी पूरी सहायता करेंगे ; तथा अनाथों की सहायता और विद्या-प्रसार व प्रचार के पुण्य अनुष्ठान में भागी हो कर अपने उन मातृ-पितृहीन बालकों का भविष्य उज्ज्वल बना देंगे।

जो सज्जन पुस्तकालय की स्थापना के लिए सहायता प्रदान करना चाहते हैं वे कृपया 'समाज सेवक समिति' ऑफ़िस—१८१ स्टेनली रोड पर पधारने का कष्ट करें।

निवेदक

प्रमोद कुमार"

प्रमोद : (जिसके चेहरे पर इतने तमाम समय संतोष और प्रसन्नता के भावों का आदान-प्रदान होता रहा है) *क्यों ?.....कैसी है अपील ?*

अनुपम : (कुछ सोचते हुए) *सुन्दर.....बहुत सुन्दर ?* (विश्राम-सा लेता हुआ) *पर आप ने अपील के नीचे अपना नाम क्यों डाल दिया ?*

प्रमोद : (आश्चर्य से) *क्यों कुछ बुरा कर दिया ?* (तनिक

ठहर) यह ड्राफ़्ट मैं ने की थी। प्रेस में दौड़ने की तकलीफ़ भी मैं ने की थी और इसे छपवाने के लिए संपादक की ख़ुशामद भी मैं ने ही की थी। —अगर मैं ने इस पर अपना नाम लिख ही दिया तो कोई गुनाह तो नहीं कर डाला ?

अनुपम : (तीखे स्वर में) तुम गुनाह की परिभाषा भी नहीं जानते शायद ? तुम्हें चाहिये था कि अपील के नीचे प्रधान जी का नाम दे देते। प्रधान जी के सामने हम लोग तो कोई चीज़ नहीं हैं न !

प्रमोद : (तिक्त स्वर में) प्रधान जी से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। उन्होंने मुझे यह काम करने का आदेश नहीं दिया था। यह तो मैं ने स्वयं अपनी इच्छा से किया है।

अनुपम : (व्यंगपूर्वक) और इसी कारण शायद आप इस काम का श्रेय स्वयं ही लेना चाहते हैं।

प्रमोद : (चिढ़े-से स्वर में) फ़िलहाल तो मैं यह नहीं चाहता—लेकिन यदि आप का ऐसा ही ख़्याल है, तो मुझे यह स्वीकार करने में कोई हिचकिचाहट भी नहीं है। (तनिक रुक, परन्तु अनुपम को बोलने का अवसर न देकर) और इस में हर्ज ही क्या है ? आख़िर मैं भी तो आदमी हूँ। मान, प्रशंसा, प्रतिष्ठा कौन नहीं चाहता ? अपने घरों का तमाम काम छोड़ कर हम लोग जो यहाँ समाज-सेवा का काम करते हैं क्या पैसे के लालच से ? हम लोग, जिन्होंने अपना जीवन समाज-सेवा के लिए बर्बाद

कर दिया है, रुपये-पैसे तो क्या, पर क्या अपने नाम व प्रशंसा के भी अधिकारी नहीं हैं ? हमारी सेवाओं का क्या कुछ भी मूल्य हमें नहीं मिलना चाहिये ?

अनुपम : (प्रमोद से अधिक तेज़ी से) मैं समझता हूँ नहीं। आत्म-संतोष ही हम समाज-सेवकों का सब से महत् पुरस्कार है जो हमें अपने हृदय की ओर से प्राप्त होता है।

प्रमोद : (किंचित व्यंगपूर्वक) आत्म-संतोष।

अनुपम : हाँ प्रमोद, आत्म-संतोष। अपना कर्त्तव्य पालन करने के उपरांत हमें चाहे संसार की ओर से बधाई, प्रशंसा और सम्मान मिले न मिले, किंतु अपने हृदय में हमें एक अधनिद्रे संतोष और सुख का अनुभव होता है, जो संसार की क्षणिक प्रशंसा से कहीं ऊपर की वस्तु है। एक बार उस शांति का हृदय में अनुभव तो कर देखो, मैं दावे से कहता हूँ, तुम कभी नाम-मान अथवा सम्मान-पत्रों की चिंता न करोगे।

प्रमोद : (शांतिपूर्वक) तुम्हारी बातें यथार्थ जगत के लिए ठीक नहीं हैं अनुपम। बीसवीं सदी की इस दुनिया में नाम और प्रतिष्ठा बहुत बड़ी वस्तुएँ है। लोग नाम के लिए प्राण तक दे देते हैं। निःस्वार्थ भाव से सेवा करने वालों को कोई दो कौड़ी को भी नहीं पूछता। सभाओं, जलसों, सम्मेलनों में उसे आदरपूर्वक स्थान तक नहीं

दिया जाता। तुम कहते हो, निःस्वार्थ सेवा करने से हृदय को अपार संतोष मिलता है—मिलता होगा.....मुझे कभी नहीं मिला। वरन् उसके स्थान पर मिला—पग-पग पर अपमान के कारण आत्म-दहन, ग्लानि, खिन्नता तथा क्षोभ।

अनुपम : सुनो प्रमोद, तुम बहुत बढ़ा-चढ़ा कर बातें कह रहे हो। समाज-सेवा के क्षेत्र में एक तो तुम्हारा अनुभव अधिक नहीं है; दूसरे तुम्हारे प्रत्येक कार्य में कुछ तुम्हारा अपना भी स्वार्थ निहित रहता था—ठीक दिवाकर और (तिवारी की ओर देखता हुआ) तिवारी जी की तरह। इसी कारण तुम इस प्रकार की भ्रामक बातें कह रहे हो।

प्रमोद : (चिढ़ कर) मैं आश्चर्य कर रहा हूँ। मेरे व तिवारी जी आदि के सम्बन्ध में तुम इतना अधिक कैसे जान गये? तुम तो जैसे अंतर्यामी मालूम पड़ते हो!

अनुपम : (भौं पर बल देकर) अंतर्यामी—प्रत्येक मनुष्य, कम से कम, अपने लिए तो अंतर्यामी होता ही है। यदि दूसरे का नहीं, तो वह अपना स्वयं का हृदय तो पढ़ ही सकता है!

प्रमोद : (जैसे उपहास कर रहा हो) क्या पढ़ सके हो तुम अपने अंतर में?

एक आवाज़ : निःस्वार्थ सेवा, बिल्कुल सच्चे हृदय से।

[कमरे के सब व्यक्ति चौंक कर दरवाजे की ओर देखते हैं। वहाँ एक अधेड़-से सज्जन खद्दर के कुरते, धोती, टोपी और काली जवाहर-बंडी में खड़े

हैं। अपनी आकृति से वे बहुत ही गंभीर व्यक्ति प्रतीत होते हैं।

[आगंतुक महोदय कमरे में प्रवेश करते हैं।]

प्रमोद : (विस्मययुक्त स्वर में) *प्रधान जी! नमस्ते।*

अन्य व्यक्ति : (हाथ जोड़) *प्रधान जी नमस्ते।*

प्रधान जी : (हाथ जोड़) *नमस्ते, क्षमा कीजियेगा प्रमोद जी। आप का प्रश्न सुन कर मैं उस का उत्तर दिये बिना न रह सका—यह तक न विचारा कि मेरा इस प्रकार उत्तर देना कितना उचित है और कितना अनुचित? किंतु मैं आप को यह विश्वास दिलाता हूँ कि अनुचित होने पर भी मेरा उत्तर सही है—इतना सही, जितना कि यह सही है कि सूरज से हमें गर्मी और रोशनी मिलती है।*

प्रमोद : (लज्जित से स्वर में) *हम तो ऐसे ही आपस में एक दूसरे से बातें कर रहे थे।*

प्रधान जी : *ठीक है। आप लोगों को आपस में एक दूसरे के सम्बन्ध में भी तो थोड़ी-बहुत जानकारी रखनी चाहिये। इस समय मैं आप को प्रसंगवश ही अनुपम जी के—यानी उनकी निःस्वार्थ सेवाओं के—सम्बन्ध में कुछ बतला देना चाहता हूँ; क्योंकि मैं जानता हूँ कि अनुपम जी स्वयं अपनी बाबत कुछ न बतलायेंगे।*

अनुपम : (लज्जित-सा अनुभव कर) *रहने दीजिये प्रधान जी! मेरे कामों को आप व्यर्थ ही बार्डर दे रहे हैं। आखिर इस की आवश्यकता ही क्या है?*

प्रधान जी : अब तक तो न थी; किंतु अब हो गयी है। प्रमोद जी की शंका का समाधान तो आवश्यक है। प्रमोद जी, सब से पहले मैं बंगाल के अकाल की बाबत कहूँगा। आज तो वे सब बातें धुँधली पड़ गयी हैं। किस तरह मैं और अनुपम अकाल के क्षेत्रों में दौरे लगाते थे—फ़र्स्ट एड का सामान, बिस्कुट और हल्की रसद लिये हुए। जगह-जगह पर अनुपम कैमरे में प्लेटें चढ़ाते थे और रात को पेड़ों के नीचे उन्हें डेवलप करते थे। अनुपम जी के फ़ोटो सब बड़े और प्रसिद्ध अखबारों व मासिकों में निकले; लेकिन उनके नीचे—'फ़ोटोज़ बाई अनुपम' या 'श्री अनुपम के सौजन्य से प्राप्त' नहीं निकला, क्योंकि ऐसी अनुपम जी की इच्छा न थी।

अनुपम : (खिन्न स्वर में) रहने दीजिये न प्रधान जी इन सब को! इन गड़े मुर्दों को क्यों उखाड़ रहे हैं आप?

प्रधान जी : (अनसुनी कर) अनुपम जी के चित्रों से जनता अकाल की भीषणता का अनुभव कर सकी। वहाँ से लौटने पर आप ने चित्र बनाने आरंभ कर दिये—एक साथ दो। साथ ही 'बंगाल रिलीफ़ फ़ंड' के लिए डी० एल० राय का 'सिंहल विजय' नाटक खेला जा रहा था उस में आप कुवेणी का पार्ट करने को तैयार हो गये—क्योंकि कोई भी उस पार्ट को नहीं करना चाहता था। दिन भर चित्र बनाते थे और रात को रिहर्सल। पूरे होने

पर दोनों चित्र सात सौ में बिके—(अनुपम की ओर मुड़) क्यों, सात सौ ही में तो बिके थे ?

अनुपम : (झेंपता-सा) नहीं, पौने सात सौ के क़रीब।

प्रधान जी : (अपनी धुन में) हाँ, तो पौने सात सौ यह और तीस-चालीस रुपये के मैडल व इनाम ड्रामे में मिले। यह सब अकाल-ग्रस्तों के भोजन और वस्त्रों के वास्ते गये। और तारीफ़ यह है कि कोई भलामानुस इसे नहीं जानता। मुझे प्रसन्नता है कि अनुपम जी की इन सेवाओं की बाबत अब आप लोग भी जान गये.....प्रमोद जी और तिवारी जी.....

अनुपम : अब तो ख़तम कीजिये। या फिर मुझे यहाँ से बाहर जाने दीजिये।

प्रधान जी : नहीं, बाहर जाने की क्या आवश्यकता है ? मैं समझता हूँ, आप के सम्बन्ध में इतना ही काफ़ी है। क्यों प्रमोद जी ?

प्रमोद : (गंभीरतापूर्वक विचार कर रहा है)

तिवारी : (उठ खड़ा हो कर) मैं कुछ कहना चाहता हूँ प्रधान जी !

प्रधान जी : अवश्य कहिये।

तिवारी : हम ने आपसे कॉमरेड अनुपम की निःस्वार्थ सेवाओं के सम्बन्ध में सुना, किंतु यह समझ में न आया कि इन सब बातों को हमें सुनाने का क्या प्रयोजन था ? सभी आदमी तो कामरेड अनुपम नहीं हो सकते !

प्रमोद : (कुछ कटुतापूर्वक) और सभी आदमी प्रमोद और तिवारी जी भी तो नहीं हो सकते ?

तिवारी : (आश्चर्यपूर्वक) क्या मतलब ?

प्रमोद : तिवारी जी, बेकार की बहस से क्या लाभ ? मैं प्रधान जी का आशय समझ गया हूँ।

तिवारी : उस से क्या ? मैं समझता हूँ आप लोग ग़लती पर हैं।

प्रमोद : देखिये, आप शायद यह सिद्ध करने पर तुले हुए हैं कि जो सेवायें—और जिस प्रकार—आप कर रहे हैं, केवल वही सही हैं और बाक़ी सब ग़लत। लेकिन यह शायद आप की भूल है। आप.....

प्रधान जी : प्रमोद जी, आप मुझे कहने दीजिये। देखिये तिवारी जी, आप की, या प्रमोद की, या दिवाकर की समाज सेवायें आप लोगों के समाज-सेवा के उद्देश्य पर ही तो निर्भर करती हैं। अपनी सेवाओं की सचाई, उनकी राईटनेस पता लगाने के लिए आप को उन की असलियत देखनी होगी। क्या वास्तव में आप की सेवाओं में परोपकार, दया, करुणा, व सहायता के भाव निहित है ? या उन में आप का कोई निजी ही मंतव्य छिपा हुआ है ? आप समाज-सेवायें समाज के लाभार्थ ही करते हैं या केवल इस कारण कि इस से आप के अहं या आप की अन्य किसी भावना की तुष्टि होती है ?

[सहसा बाहर से कोई कंपित कंठ में आवाज़ देता है—'प्रमोदकुमार जी sss']

प्रमोद : (दायाँ हाथ ऊपर उठा कर) *ज़रा ठहरिये, कोई मुझे पुकार रहा है।*

[प्रमोद तेजी से उठ कर बाहर जाता है। एक-दो मिनट तक सब खामोश रहते हैं। केवल तिवारी बौखलाये-से इधर-उधर देखते हैं।

प्रमोद और उसके साथ एक दुबले-पतले व्यक्ति का प्रवेश। वह गबरून का काला कोट और खद्दर का पायजामा पहने हुए है—मैला और तेल व कालिख के दागों वाला। सिर पर काली गोल टोपी और पैरों में बाटा के चप्पल। हाथ में एक बड़ा-सा थैला लटका रखा है।]

प्रमोद : (आगंतुक से) *बैठिये महाशय।* (उसे सकुचाता देख कुर्सी आगे बढ़ाता है) *झिझकते क्यों हैं? बैठिये न!*

[आगन्तुक सहमा हुआ-सा कुर्सी पर बैठ जाता है और अपना झोला धीरे से फर्श पर अपनी कुर्सी के पास रख देता है।]

प्रमोद : *कहिये, क्या आज्ञा है?*

आगन्तुक : (काँपते स्वर से, जैसे भय खा रहा हो) *जी, कई दिन से अख़बार में अनाथालय के बच्चों के लिए किताबों की ज़रूरत की ख़बर पढ़ रहा था। आज 'बिजली' अख़बार में भी यह ख़बर देखी। मेरे पास कुछ यह किताबें* (थैला ज़मीन से उठाता हुआ)

बेकार रखी हुई थीं मैं.....मैं इन्हें उन ज़रूरत-मंद बच्चों के लिए ले आया। (चेहरे पर आत्म-संतोष की लाली आ जाती है)

प्रमोद : (आभारी स्वर से) आप का बहुत धन्यवाद महाशय। आप का यह उपकार चिर-स्मरणीय रहेगा।

आगन्तुक : (घबरा कर) नहीं-नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। मेरे पास भी तो यह किताबें रखी हुई थीं; कुछ भी काम न आ रही थीं; अब ये किसी के काम तो आ जायेंगी। (थैला प्रमोद को देता है)

प्रमोद : (थैले में से पुस्तकें निकालता हुआ) धन्यवाद महाशय, अनेक धन्यवाद। (पुस्तकों के नाम पढ़ता है) बाल रामायण, सोने का झरना, सुनहरी नदी का राजा, आकाश-पाताल की बातें, विज्ञान की कहानियाँ, ग्राम्य जीवन, नेपोलियन बोनापार्ट, जापान का हाल, साहसी बालक, ध्रुव-यात्रा, राबिंसन क्रूसो, जस्टिस रानाडे। (अत्यंत प्रसन्न हो कर) महाशय जी, किन शब्दों में आप को धन्यवाद दिया जाय? बालकों को ऐसी ही उत्तमोत्तम और रोचक पुस्तकों की आवश्यकता थी। आप की यह सहायता ही पुस्तकालय की स्थापना के लिए बहुत काफ़ी है। (सहसा) किंतु महाशय, क्या मैं जान सकता हूँ, ऐसी उपयोगी और सुन्दर पुस्तकों को आप अपने से अलग क्यों कर रहे हैं?

आगन्तुक : (लड़खड़ाते स्वर में) जी, यह मेरे लड़के की किताबें हैं। मैं ने इन्हें उसी के लिए ख़रीदा था, लेकिन जब वह इन्हें पढ़ चुका तो उसे इन की क्या ज़रूरत ?.....यही सब तो मैं ने उसे समझाया लेकिन.....(सहसा रुक कर) लेकिन साहब यह सब बेकार की बातें हैं। आप इन किताबों को रख लीजिये। बस! (उठ खड़ा होता है)

प्रमोद : (चौंक कर) किंतु अपना नाम तो बता जाइये जनाब।

आगन्तुक : (घबरा कर) नाम ?.....मेरा नाम ?.....लेकिन मेरे नाम का क्या कीजियेगा आप ?

प्रमोद : (नम्रतापूर्वक) आख़िर हमें इन किताबों के ऊपर इन के दाता के नाम का तो उल्लेख करना ही पड़ेगा।

आगन्तुक : (मुड़ता हुआ) ओह! इस की कोइ ज़रूरत नहीं साहब.....कोई ज़रूरत नहीं.....मैं तो एक मामूली आदमी हूँ, यहीं कारख़ाने में काम करता हूँ। मेरे नाम की भला क्या ज़रूरत है ?..... अच्छा तो नमस्ते।

[बिना पीछे मुड़े आगंतुक का अपना ख़ाली थैला लिये हुए नापते डगों से प्रस्थान। कमरे के सब व्यक्ति निस्पंद तथा स्थिर हैं, जैसे सब को फालिज मार गया हो।

सहसा अनुपम एक गहरी साँस छोड़ कर कमरे की हृदयहीन नीरवता को भंग करता है। विषादमयी बुद्धिमत्ता की एक फीकी झलक उसके चेहरे पर आ जाती है। कमरे के अन्य व्यक्ति उस की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि डालते हैं, किंतु बोलते कुछ नहीं।]

अनुपम : (मेज़ के निकट आता हुआ) *प्रधान जी शायद कुछ कह रहे थे, लेकिन उन के बात पूरी करने से पहले ही मैं कुछ कहना चाहता हूँ.....*(दो क्षण चुप रह) *आप सब लोगों ने अभी देखा होगा .....दो मिनट पहले की इस घटना ने हमारी समाज-सेवा की क़लई कितनी सुन्दरतापूर्वक खोल दी है। हमारी सेवाओं की असलियत पर कितनी अच्छी तरह से रोशनी फेंकी गयी है।* (रुक कर) *अभी की इस घटना को ग़ौर से देखिये.....अनाथालय ने पुस्तकों की माँग पेश की और इस ग़रीब आदमी ने माँग पूरी कर दी.....संवाद भेजने का स्थल था अनाथालय—जहाँ पुस्तकों की आवश्यकता थी—और उसे रिसीव करने वाला था यह ग़रीब मज़दूर—जिस ने पुस्तकों का दान दिया। एक ने माँग पेश की, दूसरे ने वह फ़ौरन पूरी कर दी। बाक़ी के हम सब तो तार के खंभे मात्र थे—जड़..... नीरव.....निश्चल.....*

प्रमोद : (चौंक कर) *तार के खंभे !.....हाँ, सच ही तो.....*

[कमरे के व्यक्ति जैसे बहुत अधिक प्रभावित होने के कारण चुपचाप हैं, जैसे कुछ समझने की चेष्टा कर रहे हों। तिवारी का हिलना-डुलना बंद है। अनुपम अपनी कोहनी मेज़ पर टेक, ठोडी के नीचे मुट्ठी में तूलिका पकड़, अधखुली तथा विचारक आँखों से अंतरिक्ष की ओर देखता हुआ, निर्देशक प्रमथेश बरुआ के 'मुक्ति' चित्र के सुप्रसिद्ध पोज़ जैसा प्रतीत हो रहा है।

कमरे में सुई गिरने की आवाज़ का सन्नाटा है, केवल दीवार की घड़ी टिक-टिक कर कमरे में जीवन-आभा भर रही है।]

[परदा गिरता है]

परिशिष्ट

[अ]

इस संग्रह के नाटकों की टेकनीक के संबंध में

कथानक :—एकांकी नाटक, एक ही अंक का होने के कारण, जीवन का पूर्ण चित्र न होकर मात्र एकांगी चित्र होता है। उसमें जीवन की केवल एक ही घटना, या केवल एक ही पहलू का चित्र पेश किया जाता है तथा उसीको चरम सीमा पर पहुँचा कर नाटक की समाप्ति कर दी जाती है। इस दृष्टि से एकांकी नाटकों को पूर्ण होते हुए भी अपूर्ण होना चाहिये, क्योंकि वे पात्रों के जीवन की 'एक विशेष परिस्थिति अथवा एक उद्दीप्त घड़ी' के ही चित्र होते हैं, उनके संपूर्ण जीवन के नहीं। तथा जीवन इतनी छोटी व सरल वस्तु नहीं है कि उसमें उल्लेखनीय परिस्थिति या घटना केवल एक ही बार आये, और उसके बाद पात्र आसानी के साथ जीवन के मार्ग पर बढ़ते चले जायें।

इस चीज़ को अधिक स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि

यदि मानव जीवन एक बड़ा नाटक है, तो एकांकी उस 'जीवन नाटक' का केवल एक दृश्य है, जो अपने में पूर्ण होते हुए भी अपूर्ण है, क्योंकि उस दृश्य की समाप्ति के साथ ही पात्रों का जीवन भी समाप्त नहीं हो जाता, वरन वे लोग भविष्य में और संघर्ष करने के लिए भी जीते रहते हैं। तथा उनके इन संघर्षों की गाथा भी हमारे लिए कुतूहल की वस्तु हो सकती है।

यहाँ हिंदी के सुप्रसिद्ध एकांकीकार डॉक्टर रामकुमार वर्मा के मत का उल्लेख करना आवश्यक है। डॉक्टर साहब का मत है कि सफल एकांकी नाटक को बिल्कुल पूर्ण होना चाहिये। नाटक की समाप्ति के बाद नाटककार के लिए कुछ कहना शेष न रह जाना चाहिये। [डॉक्टर साहब के नाटक इस कसौटी पर खरे उतरते भी हैं।] परंतु मैं इस मत से सहमत नहीं हूँ। यदि एकांकी नाटक के (अपने में पूर्ण होते हुए भी) समाप्त होने पर, पाठक या दर्शक के मन में नाटकीय पात्रों की आगामी परिस्थितियों के प्रति उत्सुकता पैदा हो जाती है और मन में यह विचार उठता है कि कितना अच्छा होता अगर नाटक और आगे चलता तथा सब चीजें पूरी तरह ही समाप्त हो जातीं; तो उस एकांकी की सफलता में संदेह नहीं किया जा सकता। वह अपना कार्य पूरी तरह कर चुकता है।*

---

*हिंदी के दूसरे सुप्रसिद्ध एकांकीकार श्री उपेन्द्रनाथ अश्क के अनेक एकांकी इसी तरह के हैं। देवताओं की छाया में, पापी, लक्ष्मी का स्वागत, चरवाहे, चुंबक, भँवर, उड़ान आदि नाटक अपनी समाप्ति पर मन में एक टीस या कसक-सी छोड़ जाते हैं और ऐसा लगता है कि नाटककार यदि चाहे तो आगे भी इन पात्रों के आगामी उतार-चढ़ाव की गाथा चित्रित कर सकता है।

'तार के खंभे' के पाँचों नाटक भी इसी प्रकार के हैं। यह नाटक विकास-संघर्ष को पार कर चरमोत्कर्ष तक बढ़ते हैं और वहाँ, सदैव के लिए समाप्त न होकर, एकदम रुक जाते हैं। इन नाटकों का अंत, 'नाटकीय अंत' के जैसा कोई गौरव नहीं ग्रहण करता। नाटकों के समाप्त होने पर भी कुछ शेष-सा रह जाता है। अधिक स्पष्ट करने के लिए कहा जा सकता है कि इन नाटकों की समाप्ति के बाद उन्हीं कथानक को आगे बढ़ाकर दूसरे एकांकी तैयार किये जा सकते हैं या फिर इन्हें ही डेवलप कर एक बड़ा नाटक बनाया जा सकता है।

रंगमंच-निर्देश :—रंगमंच-निर्देश नाटक के लिए अत्यंत आवश्यक वस्तु हैं। इनकी सहायता से दो कार्य संपादित किये जाते हैं। एक तो इन निर्देशों के द्वारा रंगमंच की पूरी व्यवस्था समझा दी जाती है, जैसे—किस जगह का दृश्य उपस्थित किया जा रहा है? कैसा कमरा है? कितने दरवाज़े व कितनी खिड़कियाँ हैं? प्रवेश द्वार किधर है? कमरे में क्या-क्या सामान है? इस समय वहाँ पर कौन व्यक्ति उपस्थित हैं? वे क्या कर रहे हैं.....आदि-आदि। दूसरे, यह निर्देश पात्रों की रूप-कल्पना तथा उनके अभिनय को भली-भाँति प्रस्तुत कर देने के लिए प्रयोग में लाये जाते हैं।

इस संग्रह के नाटकों में भी रंगमंच-निर्देशों से यही दो कार्य लिये गये हैं। हाँ, कुछ संकेत अवश्य केवल प्रभाव-व्यंजन के लिए ही प्रयोग में लाये गये हैं। यह तीखे और प्रभाव-व्यंजक (तथा कुछ काव्यात्मक) संकेत केवल पाठकों के ही आनंद लेने की वस्तु हैं, क्योंकि यह पात्रों की मुद्रा तथा रंगमंचीय परिस्थिति की

कल्पना को अधिक सजीव बना देते हैं। इनका रंगमंच पर प्रदर्शन किसी भी प्रकार नहीं हो सकता। [न ही यह रंगमंच पर प्रदर्शित किये जाने के लिए लिखे ही गये हैं।]

भाषा :—नाटकों की भाषा कैसी होनी चाहिये, इस संबंध में अनेक मत हैं। बहुत से लोग तो नाटकों को साहित्यिक वस्तु मानते ही नहीं—केवल अभिनय करने की वस्तु मात्र मानते हैं—क्योंकि उनमें साहित्यिक भाषा का प्रयोग नहीं होता। आज के जागरूक नाटककार के सामने तो भाषा का यह प्रश्न अत्यंत जटिल रूप में उपस्थित है। उसे यह ध्यान तो रखना ही पड़ता है कि उसके पात्र ऐसी ही भाषा का प्रयोग करें, जो प्रति-दिन प्रयोग में लायी जाती हो, तथा जिससे नाटक वास्तविक व बिल्कुल सच्चे मालूम पड़ें; किंतु साथ ही यह बात भी उसे ध्यान में रखनी पड़ती है कि उसके नाटकों की भाषा, आज से दस साल बाद भी नयी व स्वाभाविक ही रहे, तथा इतनी पुरानी व निर्जीव न हो जाय कि नाटक खेलने योग्य न रहें।

भाषा की यह समस्या इस संग्रह के नाटककार के सामने भी रही है। इन नाटकों में तो यही प्रयत्न किया गया है कि पात्रों की भाषा सरल, स्पर्शी और गतिशील हो। साथ ही यह ध्यान रखा गया है कि भाषा बनावटी तथा अस्वाभाविक न प्रतीत हो। अस्वाभाविकता को बचाने के लिए इन नाटकों में 'स्वगत-कथन' का प्रयोग भी बिल्कुल नहीं किया गया है।

संविधान :—इन नाटकों का संविधान रंगमंचीय है। यह अपने वर्त्तमान रूप में, बिना किसी असाधारण परिवर्त्तन के आसानी से खेले

जा सकते हैं। इसी कारण इन नाटकों के आरंभ में पूर्व-कथा नहीं दी गयी है, क्योंकि नाटक देखने वाले उससे कोई लाभ नहीं उठा सकते हैं। वैसे ज्यों-ज्यों नाटक आगे बढ़ता जाता है, विगत् घटनाओं के संबंध में त्यों-त्यों, पाठकों तथा दर्शकों को (पात्रों के संभाषणों द्वारा) सब कुछ मालूम होता जाता है।

इसी प्रकार, इन नाटकों में पात्रों का परिचय भी नाटककार द्वारा नहीं दिया गया है,* वरन पात्र स्वयं ही अपनी बातचीत में एक दूसरे के द्वारा, अपना परिचय पाठकों और दर्शकों को देते हैं। नाटकों के आरंभ में संवादों के निर्देश में पात्रों का नाम न दे कर 'पहला व्यक्ति, दूसरा व्यक्ति'; अथवा 'युवक,युवती' आदि का प्रयोग किया गया है। इसके बाद धीरे-धीरे, पात्रों के ही एक दूसरे के नाम लेकर पुकारने पर, उनके नाम प्रकट किये गये हैं।

पात्र :—इस संग्रह के दो नाटकों [शोहदा, और तार के खंभे] में स्त्री-पात्र नहीं हैं। नाटक के सब पात्र पुरुष ही हैं। एकांकी नाटक, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, जीवन की एक उद्दीप्त घड़ी की या किसी महत्वपूर्ण घटना के एक पहलू की झांकी मात्र है। उस घड़ी में स्त्री-पात्र अनिवार्य हों; ऐसी तो बात नहीं। पुरुषों के जीवन में ऐसी बीसियों घड़ियाँ आती हैं जिनमें नाटकीयता भी होती है और संघर्ष (Conflict) भी; और किसी स्त्री से उनका किसी प्रकार का भी संबंध नहीं होता। यह दोनों नाटक ऐसी ही घड़ियों का चित्र उपस्थित करते हैं।

---

*हिंदी के तो पचानवे प्रतिशत एकांकी नाटकों में पात्रों का परिचय, एकांकीकार द्वारा ही दिया गया है— पाठकों के दृष्टिकोण से यह ठीक है, क्योंकि इससे उन्हें नाटक समझने में कठिनाई नहीं होती।

फिर हमारे इस रूढ़िग्रस्त समाज में, रंगमंच पर स्त्री पुरुष के एक साथ आने के मार्ग में कई रुकावटें हैं। कुछ शहरों की बात जाने दीजिये। बाक़ी शहरों के रंगमंच इसी कठिनाई के कारण पनप नहीं सके हैं। इसी कारण अभी तक प्रायः ऐसे नाटकों की माँग की जाती है, जिनमें केवल पुरुष पात्र हों। कालेजों और विश्वविद्यालयों में तो इस प्रकार के नाटकों की माँग बहुत ही ज्यादा है। [अधिक दूर जाने की आवश्यकता नहीं, हमारा पयाग विश्वविद्यालय ड्रामेटिक क्लब अभिनय करने के लिए ऐसे ही नाटक चुनना पसंद करता है, जिनमें स्त्री पात्र न हों, अथवा कम हों; जैसे कि एक सुन्दर अभिनेय नाटक की कसौटी ही यही है कि 'बस उसमें स्त्री-पात्र न हों।'] भारतवर्ष के अनेक शहरों की यह दशा है। पुरुष और स्त्री का साथ-साथ अभिनय करना क्योंकि एक 'शर्म की बात' क़रार दी गयी है, इस कारण जब पुरुषों की कोई संस्था नाटक खेलती है तो कुछ सदस्यों (बेचारों !) को विवश होकर अपने पुरुषत्व का त्याग करना पड़ता है (भले कुछ घंटों के लिए ही सही) ; और यदि लड़कियों या स्त्रियों की कोई संस्था नाटक अभिनीत करती है तो कुछ सदस्याओं (भाग्यवानों !) को अवश्य ही थोड़े समय के लिए अपने Gender का परिवर्तन करना होता है। और सच यह है कि रंगमंच पर पुरुष को स्त्री का, तथा स्त्री को पुरुष का अभिनय करते देख यह इच्छा होती है कि वहीं ज़ोर-ज़ोर से रोना शुरू कर दिया जाय, या फिर हाल से बाहर निकल आया जाय।*

---

* श्री उपेन्द्रनाथ अश्क ने अपने उपन्यास 'गिरती दीवारें' में इस प्रकार के नाटकों के अभिनय का काफ़ी मनोरंजक और चुभता हुआ वर्णन किया है। [पृष्ठ ५१८ – ५४२]

परिशिष्ट

हमारे देश में अभिनय-कला के इतने पिछड़ जाने के अनेक कारणों में से एक कारण यह भी है कि अभी हम लोगों (शिक्षितों) में इतनी जागृति नहीं हुई है कि पुरुष और स्त्री रंगमंच पर साथ-साथ अभिनय कर सकें। किंतु जागृति होगी अवश्य, यह तो निश्चित है ; और यह भी निश्चित है कि शीघ्र ही होगी [शिक्षित स्त्रियों के प्रति वर्ष बढ़ते आँकड़ों से यह विश्वास सहज ही हो जाता है]। आज के समय से सामाजिक-जागृति के युग तक जो रिक्त (Vacuum) है उसको पूरा कर, इन दोनों सिरों को जोड़ने के लिए पुरुष-प्रधान (और स्त्री-प्रधान भी) नाटकों की आवश्यकता है।

प्रस्तुत दोनों नाटक, आशा है, ऊपर की कठिनाइयों व आवश्यकताओं को कुछ हद तक हल कर सकेंगे।

[ब]

नाटकों के लिए अभिनय संकेत—

शोहदा* :—इस नाटक में निम्नलिखित पात्र हैं—

१. होटल मालिक
२. पहला व्यक्ति (ख़ूनी)
३. नवयुवक (शोहदा)
४. पुलिस इंस्पेक्टर
चार-पाँच जुआरी और इतने ही सिपाही।

नाटक का परदा उठने से पहले ही जुआरी बने व्यक्तियों को ताश खेलना शुरू कर देने का आदेश दे देना चाहिये ;

---

* इस नाटक का रेडियो संस्करण 'आवारा' नाम से आल इंडिया रेडियो इलाहाबाद से १६ अप्रैल १९४९ को प्रसारित हो चुका है।

और जब उन्हें खेलते हुए तीन-चार मिनट हो जायँ, तब परदा उठाना चाहिये। इस से नाटक में स्वाभाविकता आ जायगी।

जुआरियों का पीछे से हँसना व शोर करना स्टेज इफ़ेक्ट (stage-effect) पैदा करने के लिए रखा गया है। जुआरियों के समूचे ठहाके रंगमंच पर उपस्थित पात्रों के प्रति व्यंग-स्वरूप हैं, और इनकी सार्थकता इसी में है कि यह दर्शकों को भी व्यंग्य ही लगें। यह आवश्यक नहीं है कि नाटक में (पीछे से) उन्हीं स्थलों पर शोर मचवाया जाय, जिन्हें मैंने चुना है। कुशल निर्देशक मेरे चुने हुए स्थलों को छोड़, दूसरे नये स्थल भी चुन सकता है। ऐसी दशा में केवल दो बातें ध्यान में रखने योग्य हैं, एक यह कि शोर-गुल के ऐसे स्थल क्षणिक हों और बहुत अधिक न हों, दूसरे यह कि ऐसे स्थलों के बीच पाँच-सात मिनट का गैप (gap) अवश्य हो।

होटल मैनेजर की घंटी का ठीक तरह न बज, भद्दी तरह 'किर्र-किर्र' कर रह जाना सांकेतिक (symbolic) है। बिगड़ी घंटी (जो कि स्पष्ट आवाज़ नहीं देती) कमरे के वातावरण की अस्पष्टता तथा वेगनेस (vagueness) की ओर संकेत करती है। इस कारण नाटक में बिगड़ी घंटी ही प्रयोग में लायी जानी चाहिये।

नवयुवक के फ़ोन कर लौटते ही पुलिस न आ जानी चाहिये। नवयुवक के लौटने तथा पुलिस के आने में थोड़े समय का व्यवधान अवश्य होना चाहिये—इतने समय का, जितने में पुलिस एक नज़दीक कोतवाली से घटना-स्थल तक पहुँच सके। इतने समय तक रंगमंच पर उपस्थित तीनों पात्र ख़ामोश रहते हुए भी अपनी मुख-मुद्राओं द्वारा, अपनी परेशानी, अपनी उलझन

तथा अपने अंतर्द्वंद का सुंदर प्रदर्शन कर सकते हैं। पृष्ठ-भूमि से वायलीन का वादन रंगमंच के वातावरण को और अधिक घना व उलझन-पूर्ण बना देगा।

पुलिस के आगमन और प्रस्थान द्वारा बहुत सुंदर रंगमंचीय प्रभाव पैदा किया जा सकता है। पुलिस के आने से पहले रंगमंच पर (तथा ग्रीन रूम और विंग्स में भी) बिल्कुल शांति हो जानी आवश्यक है। उसके बाद कुछ भारी क़दमों और पुलिस के बूटों की चरमराहट की आवाज़ पेश की जानी चाहिये जो दूर से बिल्कुल निकट आ जाती है। फिर एक-दो क्षण के लिए बिल्कुल ख़ामोशी हो जाय। तब दरवाजे पर ज़ोरों की खटखटाहट होनी चाहिये और पुलिस का धड़ाके-से अंदर प्रवेश होना चाहिये।

कमरे में घुसते ही पुलिस के सिपाहियों का इधर-उधर नज़रें दौड़ाना अत्यंत स्वाभाविक होना चाहिये, जिससे प्रकट हो कि पुलिस अपने को कितना चुस्त व चालाक समझती है। इसी प्रकार सिपाही का मेज़ के नीचे देखना (इस भाव से जैसे कि ख़ूनी कोई चूहा या मेंढक है) इतने घबराये और सचेत (cautious) ढंग से होना चाहिये कि दर्शकों को बरबस हँसी आ जाय। तभी इन संकेतों के दिये जाने की सार्थकता सिद्ध होगी।

इसी प्रकार ख़ामोशी के ही बीच पुलिस और नवयुवक का प्रस्थान होना चाहिये। भारी क़दमों और जूतों की 'ढबर-ढबर' आवाज़ धीरे-धीरे दूर होती चली जाय, तथा उस की गूँज दर्शकों के कान में बनी रह जाय। ऐसे ही हिप्नोटाइज्ड वातावरण में नाटक के अंतिम संवाद के साथ परदा गिर जाना चाहिये।

"गुड बाई अनीता !"*:—इस नाटक में तीन पुरुष पात्र हैं और तीन ही स्त्री पात्र—

१. रोहित
२. जगदीश
३. ताँगे वाला
४. अनीता
५. तारा
६. माँजी

माँजी तो नाम-मात्र के लिए ही पात्र-सूची को बढ़ाती हैं। वे तो रंगमंच पर एक ओर से प्रवेश कर बिना कोई संवाद बोले, दूसरी ओर निकल जाती हैं।

इसके अतिरिक्त एक सुन्दर-सी बिल्ली की भी आवश्कता होगी जो रंगमंच पर प्रवेश करती है। 'म्याउँ' की आवाज़ पीछे से पैदा की जा सकती है।

रेडियो पर गीत तो बहुत ही सरलता से सुनवाया जा सकता है। रंगमंच पर रोहित रेडियो खोल दे, और पृष्ठभूमि में कोई गीत को गा दे—[यदि सुविधा हो सके तो माइक पर, जो रेडियो से कनेक्टेड हो ; नहीं तो वैसे ही। नाटक आख़िर नाटक ही है।]

इसी प्रकार ढोलक और घुँघरू की सहायता से ताँगे का बाहर मुख्य द्वार पर आकर रुकना, और फिर चले जाना, भी जतलाया जा सकता है।

---

* इस नाटक का रेडियो संस्करण 'सच्चा परिचय' नाम से आल् इंडिया रेडियो के लखनऊ स्टेशन से ३१ जनवरी १९४९ को प्रसारित किया जा चुका है।

रोहित, अनीता और जगदीश चाय पीते समय मूल स्क्रिप्ट में दिये संवादों के अतिरिक्त इस प्रकार की बातें— (अखबारों की, फ़िल्मों की, क्रिकेट मैच की, पुस्तकों की, मौसम की आदि-आदि) भी कर सकते हैं, जो प्रायः चाय पीते समय हलके मन से की जाती हैं. और जो अस्वाभाविक न प्रतीत हों।

नाटक प्रारम्भ में बहुत शिथिलता से चलता है, और बाद में गतिवान होने लगता है। यह चीज मैं कुशल अभिनेताओं और सफल निर्देशक पर छोड़ता हूँ कि वे नाटक को इस तरह पकड़ें कि नाटक प्रारंभ से ही रोचक और गतिवान प्रतीत होने लगे।

नाटकीय-सौंदर्य का अंतिम स्थल वह है जहाँ रोहित अनीता को गुड बाई करता है। रोहित का अभिनय करने वाले व्यक्ति को उस समय अपनी तमाम मस्ती बाहर उँडेल देनी चाहिये। एक अंदाज़ के साथ उसे अपने कोट के कालर खड़े करने चाहिये और उसी तरह एक झटके (Jerk) के साथ उसे पीछे मुड़ना व 'टा-टा' करना चाहिये। अंतिम वाक्य "गुड बाई अनीता!" तो बेहद केयरफुल केयरलेसनेस (Careful Carelessness) के साथ कहा जाना चाहिए। तभी उस वाक्य का सौंदर्य व चुटीलापन प्रदर्शित होगा, और नाटक खासी दिलचस्प समाप्ति पा सकेगा।

रोहित और जगदीश के कमरे से बाहर जाते ही एकदम परदा न गिर जाना चाहिए। बल्कि एक-दो मिनट के बाद धीरे-धीरे गिरना चाहिये।

एस्फ़ोडेल :—इस नाटक में निम्न लिखित पात्र हैं—

१. मिस्टर आनंद
२. मिस्टर कपूर
३. सुपथगा देवी
४. समाधि-क्षेत्र का चौकीदार

इस नाटक में तीन दृश्य हैं—पहले दो दृश्य एक ही ड्राइंग रूम के हैं और तीसरा एक समाधि-क्षेत्र का है।

रिवाल्विंग स्टेज पर यह नाटक आसानी से खेला जा सकता है, क्योंकि इसमें स्थल-संकलन (Unity of place) नहीं है। वैसे इस नाटक को खेलने के लिए दो बार परदे गिराने पड़ेंगे। और दूसरी बार परदा गिराये जाने पर तो स्टेज बिल्कुल ख़ाली कर एक नया ही दृश्य बनाना होगा।

इस नाटक को अभिनीत करने में परेशानी अधिक उठानी पड़ेगी और उस अनुपात से सफलता कम मिलेगी। वैसे पढ़ कर इस का आनंद अधिक उठाया जा सकता है।

प्रतिशोध :— इस नाटक में तीन पुरुष और एक स्त्री पात्र हैं—

१. अजित
२. जतीन
३. शकुंतला
४. बंसी

इस एकांकी में स्टेज इफ़ेक्ट तेज़ वर्षा की आवाज़ और बिजली की कड़क द्वारा पैदा किया गया है। इस तमाम दृश्य में

कमरे में हल्की रोशनी रहनी चाहिये—इतनी हल्की कि अजित और जतीन के चेहरे स्पष्ट न दीखें—तथा बीच-बीच में बिजली कड़कने की आवाज़ के साथ फ्लैश लाइट (flash-light) से उनके चेहरे चमक उठने चाहियें। इस नाटक का अधिक सौंदर्य इसके कुशलता-पूर्वक प्रस्तुत करने में ही है।

नाटक का अंतिम रिहर्सल घड़ी सामने रख किया जाय, जिससे मालूम हो जाय कि नाटक का 'ड्यूरेशन' (duration) इतना है। यदि नाटक पचास मिनट में समाप्त होता है, तो परदा उठने से पहले रंगमंच की घड़ी में सात बज कर दस मिनट बजाये जा सकते हैं। किंतु यदि नाटक पैंतालीस या चालीस मिनट में समाप्त होता है तो घड़ी में सवा सात या सात बज कर बीस मिनट बजा दिये जाने चाहियें, जिससे नाटक ठीक आठ बजे ही समाप्त हो।

नाटक के वातावरण को अधिक ग्रिम (grim) व रहस्य-पूर्ण बनाने के लिए पृष्ठ-संगीत की योजना भी की जा सकती है।

पुलिस लाइन और हॉस्पिटल के घंटों की आवाज़ तो भिन्न-भिन्न घंटों की सहायता से सरलतापूर्वक पैदा की जा सकती है।

तार के खंभे* :—इस नाटक में निम्न लिखित पात्र हैं—

१. अनुपम
२. तिवारी जी
३. हाल्दार (चश्माधारी युवक)

---

*इस नाटक का रेडियो वर्शन इसी नाम से आल इन्डिया रेडियो लखनऊ से २० जून १९४९ को प्रसारित हो चुका है।

४. प्रमोद
५. प्रधान जी
६. आगंतुक (मज़दूर)
७. अख़बार पढ़ने वाला युवक

इस नाटक में एक्शन (action) बहुत अधिक नहीं है। नाटक संवादों के सहारे ही चलता है, इस कारण इसे अभिनीत करने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती।

यदि रंगमंच पर उपस्थित कमरे की दीवार पर, तार के खंभे का चित्र नहीं दिया जा सकता, तो कोई हर्ज नहीं है। कमरे की दीवार सादी भी बतायी जा सकती है।

नाटक के अंत में घड़ी की आवाज़ का सुनायी देना अत्यंत आवश्यक है। यह आवाज़ विंग के माइक के सामने किसी दूसरी घड़ी को रख कर, दर्शकों तक आसानी और स्पष्टता से पहुँचाई जा सकती है।

—स०